



डायमंड शाश्वत कथा माला

रामायण के अमर पात्र

महासती सीता

उपन्यास



डॉ. विनय

रामायण के अमर पात्र माहसती सीता



डायमंड बुक्स

eISBN: 978-93-5261-553-7

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.

X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II

नई दिल्ली- 110020

फोन : 011-40712100

ई-मेल : ebooks@dpb.in

वेबसाइट : www.diamondbook.in

संस्करण : 2016

Ramayan Ke Amar Patr Mahasati Sita

By - *Dr. Vinay & Ashvini Parashar*

भूमिका

रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति के विराट कोष हैं और इन दोनों में रामायण का सम्मान भक्त की दृष्टि में महाभारत से अधिक है। यद्यपि रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का प्रतिपादन है और महाभारत में कौरवों-पांडवों की कथा के बहाने कृष्ण का ब्रह्मत्व प्रतिष्ठित किया गया है। रामायण का मान सामान्य जन में इसलिए अधिक है कि उसके चरित्र नायक राम का जीवन चरित्र व्यक्ति और समाज दोनों के लिए जीवन-मूल्य की दृष्टि से अनुकरणीय है।

आदिकवि वाल्मीकि ने सम्पूर्ण रामकथा में राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिपादित कर एक महान सांस्कृतिक आधार प्रतिष्ठित किया था और उसके बाद अनेक प्रकार से रामकथा का स्वरूप विकसित होता रहा। जैन धर्मावलम्बियों ने अपने ढंग से इस कथा को प्रस्तुत किया और बाद के आने वाले रचनाकारों ने—हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता—के आधार पर राम की कथा को उसके मूल्य की रक्षा करते हुए अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा को भक्ति का व्यावहारिक केन्द्र बिन्दु बना दिया। उनके राम भक्ति के आधार हैं और उनका जीवन ही अनुकरणीय है। गोस्वामी तुलसीदास के बाद भी रामकथा को विभिन्न रूपों में अनुभव किया जाता रहा और जहां-जहां इस विराट भाव-भूमि में कवियों की दृष्टि में जो स्थल मानवीय दृष्टि से उपेक्षित रह गये, उन्हें केन्द्र बनाकर राम की कथा में अन्य आयाम जोड़ने का उपक्रम भी जारी रहा।

रामकथा हमारे सामने जहां भक्ति का बहुत बड़ा मूल्य प्रस्तुत करती है, वही कुछ ऐसे प्रश्न भी छोड़ देती है जिनका कोई तर्कपूर्ण समाधान शायद नहीं मिल पाता और जब मन किसी बात को मानने से मना कर दे तथा उसका तर्कपूर्ण समाधान न हो, तब एक गहरे रचनात्मक द्वन्द्व की रचना होती है। हमने रामकथा के विभिन्न पात्रों को उस कथा के मूल आदर्श वृत्त में ही रखकर मनन और अनुसंधान से, औपन्यासिक रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। चूंकि रामकथा में प्रत्येक पात्र किसी न किसी जीवन दृष्टि या जीवन-मूल्य को भी प्रतिपादित करता है। राम यदि आदर्श पुत्र, पति हैं तो लक्ष्मण आदर्श भाई के रूप में प्रतिष्ठित हैं और इसी प्रकार अन्य पात्रों का मूल मूल्य वृत्त भी देखा जा सकता है। अब आधुनिक दृष्टि में यह मूल्य वृत्त कहां तक हमारे जीवन में रच सकता है, यह बहुत बड़ा प्रश्न है। इसलिए किसी भी लेखक का यह रचनात्मक प्रयास कि पुराकथा के पात्रों में क्या कोई मानसिक द्वन्द्व रहा होगा? क्या उन्होंने सहज मानव के रूप में होंठों को मुस्कराने की और आंखों को रोने की आज्ञा दी होगी? और तब हम यह अनुभव करते हैं कि उस विराट मूल्य के आलोक में छोटा-सा मानवीय प्रकाश खण्ड उठाकर अपने दृष्टिकोण से अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकें। रामगाथा के विशिष्ट पात्रों पर औपन्यासिक रचनावली के पीछे हमारा यही दृष्टिकोण रहा है कि हम उस विराट व्यक्तित्व को अपनी दृष्टि से अपने लिए किस रूप में सार्थक कर सकते हैं।

गोस्वामी जी के शब्दों में—

सरल कवित्त, कीरति बिमल, मुनि आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करै बखान॥

हम इस रास्ते पर यदि चल नहीं पाते तो चलने की सोच तो सकते हैं। हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह रहा कि जहां-जहां रामकथा के बड़ा-बड़ा ग्रन्थ कुछ नहीं बोलते, यहां उसी मूल्य चेतना में हम गद्य में कैसे उस अबोले यथार्थ को चित्रित करें। पुराकथा की दृष्टि से जो सच हो सकता है और आधुनिक दृष्टि से जो स्वीकार भी हो, ऐसे कथा तंत्रों को कल्पनाशीलता से रचते हुए हमारा हमेशा ध्यान रहा है कि मनुष्य के अन्तर का उदात्त भाव भी मुखर हो सके चूंकि हमने जब-जब इन बड़ा पात्रों से साक्षात्कार किया है, तब-तब एक उदात्त तत्व के आलोक की तरह दृष्टि के सामने आया है। उस आलोक में से थोड़ा बहुत अब हमारी ओर से आपके सामने है।

महासती सीता

लक्ष्मण के लिए यह रात कालरात्रि के समान बीती और यह जो सवेरा हुआ, इसकी प्रत्येक किरण उसे चुभ रही थी। उन्हें फिर भयानक परीक्षा की घड़ी से गुजरना था।

राम का आदेश था—, “लक्ष्मण! कल सवेरे तुम सारथी द्वारा संचालित रथ पर सीता को ले जाकर इस राज्य की सीमा से बाहर छोड़ आओ। गंगा के उस पार तमसा नदी के किनारे महात्मा वाल्मीकि का आश्रम है। जाओ, मेरी आज्ञा का पालन हो।”

“लेकिन—।”

“कोई प्रश्न नहीं, कोई परामर्श नहीं। जो व्यक्ति मेरे इस कथन के बीच कूदकर अनुनय-विनय करेगा और मेरे निर्णय को बदलने के लिए मुझ पर दबाव डालेगा, वह मेरा शत्रु होगा।

“तुम लोग मेरा सम्मान करते हो और मेरी आज्ञा में रहना चाहते हो तो सीता को यहां से ले जाओ।

सीता की इच्छा भी थी कि वह गंगातट पर ऋषि का आश्रम देख ले।

“अब जाओ लक्ष्मण।”

लक्ष्मण ने साफ देखा कि राम की आंखों से आंसू छलक आए थे, लेकिन निर्णय की दृढ़ता में कोई शिथिलता नहीं आने पाई। पास में खड़ा भरत और शत्रुघ्न मौन थे।

क्या नियति है! जब जिसने चाहा, आदेश दिया—पिता ने भरी युवावस्था में वन का आदेश दिया, भाभी सीता ने स्वर्ण मृग के पीछे राम की आवाज सुनकर मुझे राम की सेवा में जाने का आदेश दिया तथा रावण के छल का शिकार हुई और आज स्वयं श्रीराम मुझे ही सीता को वन में छोड़ आने का आदेश दे रहे हैं। इच्छा के प्रतिकूल आदेश की बाध्यता बार-बार मेरी ही परीक्षा ले रही है और मैं भी भ्रातृ आदेश मानने के लिए बाध्य हूं।

लक्ष्मण बहुत देर तक अपने महल की ऊंचाइयों को देखते हुए सोच रहे थे। अगर आज यह सूर्य न उदित होता तो आदेश पालन की घड़ी कुछ और टल जाती, लेकिन आदेश का तो पालन करना ही है। इसमें देरी क्या है? लेकिन संकट तो यह है कि वे सीता से कहेंगे क्या? और कैसे जुटा पाएंगे साहस कहने का?

क्या वे कह पाएंगे कि रावण ने बलपूर्वक उन्हें अपनी गोद में उठाकर अपहरण किया था? और फिर वह उन्हें अपनी लंका में भी ले गया तथा वहां अन्तःपुर के क्रीडा कानन अशोक वाटिका में रखा। इस तरह राक्षसों के वश में रही सीता अयोध्या की प्रजा के लिए अपवित्र हो गई हैं और सीता के बारे में फैला यह अपवाद सुनकर ही राम ने उन्हें त्याग दिया।

कितनी कठिन परीक्षा की घड़ी है यह!

आदेश का पालन करना था। अतः प्रातःकाल होते ही लक्ष्मण ने मन दुखी होते हुए भी सारथी से कहा—

“सारथी! एक सुन्दर रथ में शीघ्र गमन करने वाले घोड़े जोतकर उसमें सीताजी के लिए सुन्दर आसन बिछाओ। मैं महाराज की आज्ञा से सीताजी को तपस्वियों के आश्रम पर पहुंचा दूंगा। शीघ्र रथ लेकर आओ।”

और सारथी जो आज्ञा कहते हुए आदेशानुसार रथ ले आया और बोला, “रथ तैयार है श्रीमान!”

रथ को तैयार कराकर लक्ष्मण संकोच और दुःख अनुभव करते हुए देवी सीता के महल में पधारे।

“आज प्रातःकाल भाभी की याद कैसे आ गई देवर जी?”

“आपकी इच्छा थी कि आप मुनियों के आश्रम में जाना चाहती हैं। अतः महाराज श्रीराम का आदेश है कि गंगातट पार करके ऋषियों के सुन्दर आश्रम हैं, आज उसी दिशा में भ्रमण करना है।”

“तुम्हारे महाराज भी बड़े विचित्र हैं, मैं इतने दिन से कह रही थी तो राजकार्य में व्यस्तता के कारण कभी मेरी बात नहीं सुनी और आज अचानक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर भी मुझे प्रसन्नता है, उन्हें मेरा ध्यान तो रहा।”

लक्ष्मण के इस प्रस्ताव पर सीता हर्षित होकर चलने के लिए शीघ्र तैयार हो गई।

सीता ने अपने साथ बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकार के रत्न लिये तथा यात्रा के लिए उद्धृत होकर बोलीं, “ये सब सामग्री मैं मुनि-पत्नियों को दूंगी।”

“जैसी आपकी इच्छा कहते हुए लक्ष्मण ने सीता को रथ पर चढ़ाया और सारथी से रथ बढ़ाने के लिए कहा।

लक्ष्मण के मन में यह कसक थी कि एक सरल स्वभाव की स्त्री को वे छल से निष्कासित करने में सहयोगी हो रहे हैं लेकिन राजाज्ञा के सामने वे लाचार हैं।

ज्योंही रथ आगे बढ़ा, सीता की दाईं आंख फड़कने लगी। उन्हें लगा कि कहीं अनिष्ट तो नहीं हुआ या होने की आशंका तो नहीं है? यह सोचकर उन्होंने लक्ष्मण को कहा, “देवर जी! आज मुझे शकुन कुछ सही नहीं दिखाई दे रहे। मेरा मन ठीक नहीं है। पता नहीं क्यों आज यह अधीर हो रहा है? प्रभु करे, आपके भाई कुशल से रहें। तीनों राजमाताएं और जनपद के सभी प्राणी कुशल रहें, सबका कल्याण हो।” फिर लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए सीता ने कहा—

“तुम कुछ बोल नहीं रहे लक्ष्मण!”

“मैं आपकी बात सुन रहा हूँ भाभी! और अनुभव कर रहा हूँ आपकी अधीरता। आप वन में तो जा ही रही हैं, मुनियों के सत्संग में आपके मन को शान्ति मिलेगी। भागीरथी के तट पर स्नान

करके आप सुख अनुभव करेंगी।”

“कितना अच्छा होता, जो तुम्हारे भैया श्रीराम भी साथ होते!”

लक्ष्मण मौन होकर सीता के मन में उठने वाली शंकाएं महसूस कर रहे थे और डर भी रहा था कि लक्ष्मण सामने आने पर वे अपनी बात कैसे कह पाएंगे? भाभी ने तो अनिष्ट अनुभव करके कह लिया, लेकिन वे तो रात से इस अनिष्ट के चक्रवाती दबाव में घूम रहे हैं। वे अपनी पीड़ा किससे कहें? अवज्ञा भी नहीं कर सकते।

और तभी कुछ देर में उन्होंने देखा, सामने गोमती नदी का तट दिखाई दे रहा था।

“देखिए भाभी! हमारी यात्रा का पहला पड़ाव कितनी जल्दी आ गया! आइए, इस भूमि का स्पर्श करें। इस नदी के जल से पैर धोएं। मन और आत्मा दोनों शीतल हो जाएंगे।”

लक्ष्मण के साथ सीता भी रथ से उतर आईं।

वनवास काल के बाद पहली बार सीता ने इतना खुला आकाश और विस्तृत हरियाली देखी थी। गोमती के किनारे बसा था एक छोटा-सा गांव। यहीं ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों के कई आश्रम थे। संध्या हो चुकी थी, सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे था।

नदी तट पर आकर सूर्य की परछाई झिलमिलाती पानी में देख सीता को लगा मानो सूर्यदेव उन्हें नमस्कार कर रहे हैं और कह रहे हैं, ‘देवी! आज की रात्रि यहीं विश्राम करो, प्रातःकाल फिर आपके दर्शन करूंगा।’

वह रात्रि लक्ष्मण और सीता ने सारथी के साथ गोमती के तट पर ही एक रमणीक आश्रम में व्यतीत की।

प्रातःकाल होते ही जैसे ही पक्षियों का कलरव शुरू हुआ और यह आभास हुआ कि पौ फटने वाली है, लक्ष्मण ने सारथी को आदेश दिया, “सारथी शीघ्र रथ तैयार करो, हमें सायंकाल तक भागीरथी के तट पर पहुंच जाना है।”

सारथी को तो आदेश की प्रतीक्षा थी, उसका रथ तैयार था। आदेश पाते ही वह रथ लेकर तैयार हो गया और अब ये लोग तेजी से गंगातट की ओर बढ़ गए।

रथ इतनी तेजी से चला कि वे दोपहर तक ही भागीरथी के किनारे पहुंच गए। जल की धारा देखकर लक्ष्मण की आंखों में आंसू आ गए और वे ऊंचे स्वर से फूट-फूटकर रोने लगे।

“अरे यह क्या? लक्ष्मण! तुम रो रहे हो, मां भागीरथी के तट पर आकर तुम्हारी आंख में आंसू। क्या कारण है? इतने आतुर क्यों हो गए? कितने दिन से मेरी अभिलाषा थी कि मैं मां भागीरथी के दर्शन करूं। आज मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई है और तुम रो रहे हो। तुम इस समय जबकि मैं प्रसन्न हो रही हूं, रोकर मुझे दुखी क्यों करते हो?”

फिर लक्ष्मण को छेड़ते हुए देवी सीता ने कहा, “क्या तुम्हारे प्राणप्रिय भाई तुम्हें इतना याद आ रहे हैं कि दो दिन की बिछड़न भी सहन नहीं कर पा रहे हो? इतने शोकाकुल क्यों हो?”

तुम तो सदा ही राम के साथ रहते हो।

हे लक्ष्मण! राम तो मुझे भी प्राणों से बढकर प्रिय हैं, परन्तु मैं तो इस प्रकार शोक नहीं कर रही। तुम ऐसे नादान न बनो। चलो, शीघ्रता करो। मुझे गंगा के पार ले चलो। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूंगी। उसके बाद उन महर्षियों का यथायोग्य अभिवादन करके एक रात ठहरकर हम लोग अयोध्या लौट जाएंगे।

मेरा मन भी राम से अधिक दूर रहने पर विचलित हो जाता है। इसलिए हे सत्यवीर! शोक छोड़ो और मल्लाहों से कहो, वे नाव तैयार करें।”

सीता की सहजता देखकर लक्ष्मण फिर हूक उठे, लेकिन तुरन्त ही अपने आपको संयत करते हुए रथ से उतरे और अपनी दोनों आंखें पोंछ लीं।

लक्ष्मण ने नाविकों को बुलाया और उन्हें सीताजी के साथ भागीरथी पार कराने के लिए कहा।

मल्लाहों ने हाथ जोड़ते हुए कहा, “प्रभु! आपके आदेश पर नाव तैयार है।”

अब लक्ष्मण आगे बढते हुए सीताजी के साथ नाव पर बैठ गए। नाविकों ने बडो सावधानी के साथ उन्हें गंगा के उस पार पहुंचाया।

भागीरथी के उस तट पर पहुंचकर अब लक्ष्मण का साहस टूटने लगा और वह घडो आ गई, जिसका उन्हें डर था।

वह रात्रि लक्ष्मण ने दुविधा और अन्तर्द्वन्द्व में व्यतीत की।

प्रातःकाल जब भागीरथी के तट पर बने मुनियों के आश्रम में जाने के लिए सीता उद्यत हुई तो लक्ष्मण की दशा देखकर वे चिंतित हो उठीं।

“कहो प्रिय लक्ष्मण! क्या बात है? एक ही रात्रि में तुम्हारा मुख इतना फीका कैसे हो गया? क्या संकट है? क्या दुविधा है? किस द्वन्द्व में फंसे हो? देखो जो कुछ भी कहना हो, मुझसे स्पष्ट कहो। क्या कोई अनिष्ट हो गया है? क्योंकि मैंने अनुभव किया है कि चलते समय भी तुम बहुत उदास थे। तुम अपने मन में कोई गुप्त रहस्य पाले हुए हो।

“मेरा हृदय बडो विशाल है लक्ष्मण! और मैं हर कटु बात सहने की आदी हो गई हूं। रावण के घर में जितने दिन रही हूं, उससे बडो यातनामय जीवन का कोई भाग नहीं हो सकता। इसलिए मुझसे कोई रहस्य मत छुपाओ। कह देने से पीडो हल्की हो जाती है।”

“लेकिन भाभी! कह देने का साहस जुटाना तो सरल नहीं होता। यह ठीक है कि यात्रा में मेरा मन अत्यन्त चिंतित रहा। एक अनागत संकट मेरे सामने है और एक आदेश भी।”

“तुम पहले की बात करो। अवश्य ही वह श्रीराम का आदेश होगा और श्रीराम कोई गलत आदेश नहीं करते।”

“यही तो कष्ट है भाभी! जो आदेश मुझे दिया गया है, वह मुझे पूरा भी करना है और मेरे द्वारा पूरा होगा, यह यंत्रणा भी मुझे ही झेलनी है।”

“तो फिर इस यंत्रणा को दुविधा में क्यों झेल रहे हो ? और इतना लंबा क्यों कर रहे हो ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि बात क्या है।”

“मैं तो तुमसे कल दोपहर से ही पूछ रही हूं, क्या संकट है ? लेकिन तुमने मुझे बताया ही नहीं।”

“तब से अब तक साहस जुटा रहा था।”

“तुम बोलो लक्ष्मण ! मेरा आदेश है, उसका पालन करो।”

“भाभी ! नगर और जनपद में आपके विषय में रावण के यहां बलात् रहने को लेकर अत्यन्त भयानक अपवाद फैला हुआ है, जिसे राजसभा में सुनकर भैया राम का हृदय दुखी हो उठा। वे मुझे आदेश देकर चले गए। जिन अपवाद वचनों को न सह सकने के कारण उन्होंने मुझसे छुपा लिया, वह तो मैं नहीं बता सकता और जो कुछ मुझसे कहा, वह यही है कि भले ही आप अग्नि-परीक्षा में निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं तो भी अयोध्या का जनसमूह इसे सत्य नहीं मान रहा। इसी लोकोपवाद से महाराज ने आपको त्याग दिया है।”

“क्या ! तुम क्या कह रहे हो लक्ष्मण ? महाराज ने त्याग दिया है और तुम मुझे यहां बता रहे हो ?”

“हां भाभी ! यह महाराज की ही आज्ञा थी। उन्हीं के आदेशानुसार आपको रथ पर चढ़ाकर मैं यहां आश्रमों के पास छोड़ने के लिए आया हूं।”

क्षण भर के लिए सीता ने अपनी आंखें मूंद लीं। वह एक वृक्ष के सहारे बैठ गई। हाथ कांप रहे थे, हृदय की धड़कन तेज हो रही थी, माथे पर पसीना छलक आया था और आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

“आप विषाद न करें भाभी ! यहां से तमसा का किनारा पास ही है। वहीं महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है और अन्य अनेक तपस्वी ऋषि-मुनि वहां वास करते हैं। आप महात्मा वाल्मीकि के चरणों की छाया का आश्रय लेकर वहां सुखपूर्वक रहें।

“आप तो जनकपुत्री हैं, सब सह लेंगी। मैं जानता हूं राम में आपकी अनन्य भक्ति और अनुरक्ति है। आप हृदय में राम का जाप करती हुई पतिव्रत का ही पालन करेंगी और यही आपके लिए उत्तम मार्ग शेष है।”

सीता वृक्ष के नीचे ही गहन दुख का अनुभव करती हुई अचेत हो गई। कुछ क्षण के लिए उन्हें होश ही नहीं रहा। उनकी आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बहने लगी।

क्या विडम्बना थी ? विवाह के बाद जब राजसुख भोगने का अवसर आया तो माता कैकेयी के वरदान आड़ आ गए और एक राज महिषी को वनवास के लिए जाना पड़ा।

पंचवटी में जब एक आश्रम बनाकर सुखपूर्वक रहने का मन बनाया तो लंका का दुष्ट राजा रावण उन्हें छल से हर ले गया।

राम ने यथा प्रयास करते हुए वानरों की सेना तैयार की, रावण का वध किया और उन्हें उसके कारागार से मुक्त कराया। एक बार फिर दिन पलटे और अयोध्या की भूमि पर पैर रखने का सुअवसर मिला।

अभी तो जीवन के सुखद दिन पूरी तरह आ भी नहीं पाए थे कि यह वनवास!

“लक्ष्मण! वास्तव में विधाता ने मुझे केवल दुख भोगने के लिए ही रचा है। पल-प्रतिपल केवल दुख ही मेरे सामने नाचता रहता है।

“पता नहीं पूर्वजन्म में मुझसे ऐसा कौन-सा पाप हुआ है अथवा किसका स्त्री से बिछोह कराया था, जो मुझ शुद्ध आचरण वाली को ये कष्ट भोगने पड़ रहे हैं और आज स्वयं मुझे मेरे देवाधिदेव पति श्रीराम ने त्याग दिया।

“मैंने तो वनवास के दुख में भी सदैव उन्हीं के चरणों का स्मरण किया।

“तुम ही बताओ लक्ष्मण! अब मैं अकेली अपने परिवार और प्रियजनों से अलग इस आश्रम में कैसे रह पाऊंगी? दुख पड़ने पर किससे अपनी बात कहूंगी।

“बताओ लक्ष्मण! जब मुनिगण मुझसे पूछेंगे कि राम ने तुम्हें किस अपराध के कारण त्यागा है तो मैं क्या जवाब दूंगी?

“मैं तो अभी इसी पल देवी मां भागीरथी की गोद में शरण ले लेती, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकती। अयोध्या का राजवंश मेरे आंचल में सांस ले रहा है। राम का अंश मेरी कोख में पनप रहा है।

“लेकिन तुम चिंता मत करो। तुम्हें जो आदेश दिया गया है, वही करो। मुझ दुखियारी का क्या है? वन में रहने की मेरी आदत है। यदि महाराज की इसी में प्रसन्नता है तो इसे मैं सहर्ष स्वीकार करूंगी।

लक्ष्मण! तुम राजमाताओं को मेरी ओर से चरण स्पर्श करना और महाराज को आश्वस्त करना कि सीता उनकी चिरसंगिनी, उनके आदेश का सदैव पालन करेगी।

राम से कहना—हे रघुनंदन! आप जानते हैं, सीता शुद्ध चरित्र है। आपके हित में तत्पर रहने वाली, आप ही में प्रेम-भक्ति रखने वाली है।

“हे वीर! आपने अपयश से डरकर मुझे त्यागा है। अतः लोगों में आपकी जो निंदा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है, क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही तो हैं।

“हे महाराज! मैं दुखियारी समय की मारी हूँ। आपसे और क्या निवेदन करूँ, पुरवासियों के साथ तो आप उदार व्यवहार करेंगे ही, अपने भाइयों के साथ भी स्नेह बनाए रखें।

“स्त्री के लिए तो उसका पति ही देवता होता है, वही बंधु और गुरु होता है। एक क्लेश मुझे अवश्य है, यदि आप मुझे अपने मन की पीड़ा बता देते तो संभवतया मुझे अधिक प्रसन्नता

होती और यह विश्वास होता कि आप मेरा विश्वास करते हैं, लेकिन आप भय के कारण मुझसे कुछ नहीं कह पाए किन्तु मैं जीवित रहने के लिए अभिशप्त हूं। ऋतुकाल का उल्लंघन करके गर्भवती जो हो चुकी हूं।”

लक्ष्मण अपना साहस खो चुके थे। उनके मन में उद्विग्नता पैदा हो रही थी। राम के इस व्यवहार से वे क्षुब्ध भी थे, लेकिन रघुकुल की रीति है कि मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। वे छोटे भाई हैं और राम राजा। उनके आदेश का पालन तो लक्ष्मण को करना ही है।

लक्ष्मण ने धरती पर माथा टेकते हुए सीता को प्रणाम किया। उनकी जीभ ठहर गई थी, आंखें पथरा-सी गई थीं, गला खुश्क हो रहा था और एक अकथनीय वेदना से चेतना विलुप्त होना चाहती थी, फिर भी रोते हुए ही उन्होंने सीता कि परिक्रमा की और पुनः उनके चरण छूते हुए बोले—

“हे निष्पाप पतिव्रते! आपको यहां वन में छोड़ देने का जो पाप मैं कर रहा हूं, उसके लिए मुझे क्षमा कर देना। मैं आपका अपराधी हूं।”

और फिर बिना सीता की तरफ देखे लक्ष्मण नाव में सवार हो गए।

लक्ष्मण अनुभव कर रहे थे कि दो निरीह आंखें उन्हें देख रही हैं, लेकिन वे इन आंखों को देखने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे।

निर्जन वन में एकान्त अकेली खड़ी सीता जाते हुए लक्ष्मण को देखती रहीं। लक्ष्मण की नाव आगे बढ़ चुकी थी।

उस पार पहुंचकर लक्ष्मण रथ पर सवार हो गए। गंगा के इस पार से उस पार गए लक्ष्मण इतनी दूर आने पर भी पीछे देखने का साहस नहीं कर पाए।

सारथी रथ को दौड़ाए चले जा रहे थे। रथ के पीछे-पीछे सीता की आंखें धुंधली पड़ने लगी थीं।

अब रथ भी दिखाई नहीं दे रहा था। केवल धूल-ही-धूल और इस धूल में उन्हें दिखाई दिया अपने पिता जनक का राजमहल, वह पुष्प वाटिका जहां उन्हें श्रीराम पहली बार मिले थे और सखियों के साथ खड़ी सीता संकुचित पूजा के फूल हाथ में लिये ऐसी लग रही थीं मानो उनका देवता साक्षात् सामने आ गया है और वे उसे पूजने के लिए ही इस वाटिका में आई हैं।

जनकपुरी में सीता

उसे नहीं मालूम अपने जन्म की कथा। वह तो इतना जानती है कि वह धरती की बेटी है। मिथिला के महाराज जनक तब संतानहीन थे। राज्य में अकाल की स्थिति हो गई थी। महाराज ने श्रद्धापूर्वक विशाल यज्ञ किया और भूमि का पूजन किया।

खेतों में सामूहिक हल चलाने के लिए राजकीय आयोजन किया गया। बड़-पंडाल सजाया गया, महर्षि शतानन्द ने वेद मंत्रोच्चार करते हुए महाराज के हाथ में पवित्र जल से छींटे देकर कहा, “चलिए महाराज! हल चलाइए।” और जैसे ही महाराज ने हल चलाया, अभी वे खेत को एक पारी भी पूरी नहीं कर पाए थे कि उन्हें लगा हल के एक घड़ से टकराने की आवाज हुई है।

यह देखते ही सेवकों ने उस जगह को खोदा, वहां एक सुवर्ण पात्र में एक नवजात कन्या लेटी मुस्करा रही थी। यह कन्या हल से उत्पन्न हुई थी, इसलिए उसका नाम सीता रख दिया गया।

महारानी सुनयना ने जब उस कन्या को देखा तो उनकी आंखों में ममता उभर आई और ज्योंही उन्होंने उसे अपने सीने से लगाया, उनके स्तनों में दूध उतर आया। पास ही वृक्ष की छाया के नीचे बैठकर महारानी ने परिचारिकाओं की ओट में होकर कन्या को स्तनपान कराया।

‘महाराज जनक ने हल चलाते हुए एक दिव्य कन्या प्राप्त की है।’ जब यह समाचार नगरवासियों को मिला तो सब लोग बधाईयां देने आए।

महाराज विदेह थे, इसलिए पुत्री को पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी खुशी की सीमा न रही। जो आंगन अब तक राज्यादेश की आवाजों से गूंजता था, आज पहली बार वहां किसी बालक के रोने की आवाज सुनाई दी।

किसी भी घर का यह सौभाग्य होता है कि वहां बालक की किलकारी उभरे।

आज तक महाराज ने कभी इस सुख का अनुभव नहीं किया था, पर सीता के आने पर महाराज जनक और महारानी सुनयना के हर्ष की कोई सीमा न रही मानो उन्हें मुंहमांगी मुराद मिल गई हो।

फिर क्या था? राज्यमंत्री और महर्षि शतानन्द के परामर्श से महाराज जनक ने दूर-दूर तक के राज्यों के अधिपतियों और राजाओं के पास न्यौता भेजा कि वे अपने यहां पुत्री के जन्म का उत्सव मना रहे हैं, सभी राजागण पधारकर बालिका को आशीर्वाद दें।

बालिका सीता के जन्म की खुशी में महाराज ने कितने ही बंदियों को रिहा कर दिया, जी खोलकर दान दिया। रानी सुनयना के लिए वह दिन एक अनमोल क्षण था, उनकी सूनी गोद भर गई थी। उनका नीरस जीवन रससिक्त हो गया था। अब उनके आंगन में ज़िद करने वाला आ गया था।

बालिका सीता न केवल रूप सौन्दर्य में अप्रतिम थी, बल्कि वह अपने हाव-भाव में भी आकर्षक थी।

सीता के जन्मोत्सव पर अनेक राजागण पधारे। पूरे पखवाड □ यह उत्सव चलता रहा। इन्द्र देवता इतने अधिक प्रसन्न हुए कि नित्य ही आकाश में बादल घुमड □ ते थे और पृथ्वी को सुख पहुंचाते थे। महाराज के भूमि-पूजन यज्ञ से न केवल महाराज जनक का अपना आंगन लहलहा उठा, बल्कि उनके खेतों में भी हरियाली छा गई। जो भूमि कल तक ऊसर हो रही थी, वह आज उपजाऊ लग रही थी। यह मिथिला के लिए एक सुखकारी वर्ष था। अब निश्चय ही कोई व्यक्ति गरीब नहीं होगा। किसी प्रकार का अभाव नहीं रहेगा।

महाराज जनक तो वैसे भी धर्मात्मा, दानी और उदार प्रजापालक के रूप में प्रचलित थे, लेकिन पुत्री के आगमन ने उन्हें प्रकृति से और उदास बना दिया। अब तो यहां नित्य ही मेले लगने लगे।

पूरे पखवाड □ चले जन्मोत्सव संस्कार के सम्पन्न होने के बाद इस विशाल प्रांगण में, जहां भूमि-पूजन किया गया था, सभी राजाओं ने मिलकर देवी सीता को अपने आशीर्वाद से समृद्ध किया।

महाराज जनक के लिए तो यह दुर्लभ क्षण था। वे संतान की ओर से यद्यपि निराश नहीं हुए थे, फिर भी इस अप्रत्याशित तरीके से पुत्री का प्राप्त होना उनके लिए सुखद अनुभव अवश्य था।

जो सौभाग्यशाली होता है, उसके कदम पड □ ते ही चारों तरफ सौभाग्य-ही-सौभाग्य दिखाई पड □ ता है। महाराज के यहां भी यही हुआ। सीता के आगमन के कुछ समय बाद ही महारानी सुनयना गर्भवती हुई।

महाराज जनक ने जब यह जाना तो सीता को साथ लेकर वे महारानी के कक्ष में गए।

रानी ने शैया से उठकर सीता को अपने अंक से लगा लिया और बोलीं, “मेरी सौभाग्यशाली बेटी! तू देवी है, तू साधारण कन्या नहीं है, तू देवकन्या है, तेरे आगमन से ही मेरे यहां एक और फूल खिलने वाला है।”

सीता ने अपने पिता से पूछा, “मेरे आने से कहां फूल खिला पिताजी?”

राजा असमंजस में पड □ गए। इस बालिका को क्या जवाब दें? तब रानी ने कहा, “हे पुत्री! कुछ दिनों में तुम्हारे साथ खेलने के लिए तुम्हारी छोटी बहन आएगी।”

बाल सुलभ प्रसन्नता जाहिर करते हुए सीता खिलखिला पड □ी, “अच्छा मेरी छोटी बहन आएगी, तब मैं इसे बहुत प्यार करूंगी। जैसे आप मुझे गोद में खिलाते हैं, वैसे मैं उसे अपनी गोद में खिलाते हुए उसे ढेर सारे फूल दूंगी।”

और फिर कुछ समय बाद महाराज जनक के यहां एक कन्या ने जन्म लिया। इसका नाम उर्मिला रखा गया।

सीता तो अपनी छोटी बहन पाकर बहुत प्रसन्न हुई, क्योंकि अब उनके लिए यह महल अकेला

नहीं था, उनके साथ उनकी सहेली बनकर छोटी बहन आ गई थी।

लडकी की पराया धन होती है और बेल की तरह बढती है। देखते-ही-देखते महाराज जनक की ये दोनों कन्याएं युवती हो गईं।

महाराज ने सीता को बढते देखा तो उन्हें प्रसन्नता भी हुई, लेकिन साथ ही उनके विवाह की चिंता भी।

एक दिन सीता ने महाराज के विशेष कक्ष में रखे हुए धनुष को कक्ष की सफाई कराते हुए उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दिया। महाराज जनक को जब यह ज्ञात हुआ कि सीता ने यह धनुष उठा लिया है तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही।

यह भगवान महादेव शिव का धनुष था, जिसे महादेव ने अपने श्वसुर प्रजापति दक्ष महाराज के यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए उठाया था। उन्होंने देवताओं से कहा था कि मैं अपना यज्ञ-भाग लूंगा, लेकिन प्रजापति दक्ष ने उसे स्वीकार नहीं किया।

महाराज दक्ष की पुत्री और महादेव की पत्नी सती को अपना और अपने पति का यह अपमान सहन नहीं हुआ और देखते ही देखते वे यज्ञ कुंड में कूद पड़ीं।

सती के इस प्रकार अग्नि-समर्पण से शिव क्रुद्ध हो गए।

देवताओं के अनुनय-विनय पर उन्होंने प्रसन्न होकर यह धनुष उन्हें दे दिया।

महाराज जनक के पूर्वजों ने देवताओं से इस धनुष को प्राप्त किया।

इस शिव-धनुष को उठाना कोई सरल काम नहीं था, प्रत्यंचा चढाना तो दूर की बात है। इसकी प्रत्यंचा तो वही चढा सकता है, जो शिव का अनन्य भक्त हो या जिस पर शिव की कृपा हो।

जब सीता ने यह धनुष उठा लिया तो निश्चय ही इसके लिए सुयोग्य वर वही हो सकता है, जो इस धनुष की प्रत्यंचा चढाए।

बस फिर क्या था! देवी सुनयना को बुलाकर महाराज जनक ने अपने मंत्रीमंडल के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की कि वे अपनी पुत्री सीता का विवाह उसी वीर क्षत्रिय के साथ करेंगे, जो इस धनुष की प्रत्यंचा चढा देगा।

सीता के लिए तो यह एक सामान्य बात थी। जब भी कभी सीता उसके पास आती-जातीं या उसे स्वयं सफाई करने का ध्यान आता तो वे उसे बढती सरलता से उठा लेतीं और पूजा-भाव से नीचे की जमीन साफ करके बढा आदर के साथ धनुष को वहीं रख देतीं।

महाराज जनक ने धनुष की प्रत्यंचा चढाने के लिए दूर देश से अनेक राजा। महाराजाओं को आमंत्रित किया और साथ ही यह घोषणा करा दी कि महाराज जनक अपनी पुत्री का विवाह उसी क्षत्रिय से करेंगे, जो इस धनुष को उठाकर इसकी प्रत्यंचा चढाएगा।

इसके लिए उन्होंने धनुष यज्ञ का आयोजन किया।

राम का जनकपुर आगमन

अयोध्या के महाराज दशरथ बड़े प्रतापी राजा थे। उनकी तीन रानियां थीं-कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा।

महाराज निःसंतान थे। इतने बड़े राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इससे वे चिंतित रहने लगे।

उनकी राज्य परिषद में अनेक विद्वान महात्मा थे। महर्षि वसिष्ठ राजगुरु थे। उन्हीं के परामर्श पर महाराज दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया और मुनि ऋष्यशृंग को यज्ञ का पुरोहित बनाया गया।

ऋष्यशृंग के यज्ञ प्रताप से पूर्णाहुति के दिन यज्ञकुंड से एक खीरपात्र प्रकट हुआ। मुनि ऋष्यशृंग ने महाराज से कहा, “लीजिए महाराज! आपकी मनोकामना पूरी हो। यह खीरपात्र लीजिए और अपनी पत्नियों को इसे खिला दीजिए।”

महाराज ने खीरपात्र से आधी खीर कौशल्या को और आधी कैकेयी को दे दी। दोनों रानियों ने अपनी खीर का आधा-आधा अंश सुमित्रा को दे दिया।

समय आने पर अयोध्यापति महाराज दशरथ के यहां क्रमशः चार पुत्र उत्पन्न हुए।

कौशल्या के पुत्र राम, कैकेयी के भरत और सुमित्रा के यहां लक्ष्मण व शत्रुघ्न जन्मे।

महाराज दशरथ इन चार पुत्रों को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी खुशी की कोई सीमा न रही। जहां राजमहल में एक भी किलकारी नहीं उभरती थी, वहां चार-चार बच्चों की किलकारियों ने धूम मचा दी।

धीरे-धीरे ये राजपुत्र बड़े हुए। महर्षि वसिष्ठ, वामदेव और जाबालि के संरक्षण में इन्होंने वेद और धनुर्विद्या सीखी।

राम बड़े थे, अतः महाराज दशरथ को अत्यन्त प्रिय थे। राम युद्ध-कुशल भी थे और धीर, गंभीर, दयावान व सहिष्णु भी थे। उनकी ख्याति महाराज दशरथ के चारों पुत्रों में सबसे अधिक थी।

यही सोचकर एक दिन महर्षि विश्वामित्र अयोध्या पधारे।

महाराज दशरथ ने जब सुना कि महर्षि विश्वामित्र पधारे हैं तो उन्हें बहुत अधिक प्रसन्नता हुई।

अपने सिंहासन से उठकर महाराज दशरथ ने मुनि का आर्य पाद सेवन करते हुए स्वागत किया और उन्हें राजसभा में उच्च स्थान पर बैठाते हुए कहा, “आज अयोध्या के अहोभाग्य, जो ऋषिवर पधारे हैं।” और फिर उनका यथावत् अभिवादन करते हुए उनसे निवेदन करते हुए कहा, “आज्ञा कीजिए देव! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं? आपके अयोध्या आगमन का प्रयोजन क्या है?”

महाराज को अपना आशीर्वाद देते हुए और उनके स्वागत से प्रसन्न महर्षि विश्वामित्र ने उनसे कहा, “हे राजन! मैं एक सिद्धि यज्ञ कर रहा हूँ और देख रहा हूँ कि अनेक राक्षस बार-बार मेरे यज्ञ में व्यवधान डाल रहे हैं। यद्यपि मैं स्वयं इन राक्षसों का वध करते हुए बार-बार उठ नहीं सकता और उनका वध नहीं कर सकता। अतः मैं इस शुभ कर्म के लिए तुम्हारे पुत्र राम को मांगने आया हूँ। आप राम को मेरे साथ भेज दें। मैं इसे बला, अति बला शक्तियों से सम्पन्न कराके सभी दिव्यास्त्रों से युक्त करूँगा, ताकि यह सम्पूर्ण आर्यावर्त को एक अखंड राज्य के रूप में संगठित करके उसका निष्कंटक अधिपति बन सके। इसे मैं पाशुपतास्त्र, इन्द्रास्त्र और आग्नेयास्त्र जैसे दिव्य अमोघ अस्त्रों से युक्त कर दूँगा।”

महाराज दशरथ राम से अत्यधिक प्रेम करते थे। विश्वामित्र की राम को ले जाने की बात सुनकर महाराज दशरथ को बहुत दुख हुआ और राम के वियोग की कल्पना करके वे अचेत हो गए।

कुछ समय पश्चात् चेतन्य होने पर वे अत्यन्त भयभीत हो गए और राम का वियोग सहन करने में वे अपने आपको असमर्थ अनुभव कर रहे थे।

कुछ क्षण शान्त रहने के पश्चात् महाराज दशरथ ने मुनि से कहा, “हे महर्षि! राम तो अभी बहुत छोटा है, वह तो अभी पूरे सोलह वर्ष का भी नहीं हुआ है। मैं आपके सामने प्रस्तुत हूँ। मेरी अक्षौहिणी सेना आपकी सेवा में तैयार है। आप मुझे आदेश दीजिए, मैं स्वयं ही हाथ में धनुष लेकर यज्ञ के मुहाने पर रहकर आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा। मेरे द्वारा सुरक्षित आपका अनुष्ठान नियमानुसार बिना किसी विघ्न-बाधा के पूरा हो जाएगा। चूँकि राम तो अभी बालक है, यह दूसरे के बलाबल को नहीं जानता। यह न अस्त्र-बल में कुशल है और न किसी कला में निपुण और मैंने तो देवासुर संग्राम में भी सम्बर जैसे असुर का वध किया था। अतः मैं सब प्रकार से आपके यज्ञ की रक्षा करने योग्य हूँ। मेरी समस्त सेना आपके आदेश पर युद्ध के लिए भी तैयार है।

“और आप तो जानते हैं, राम अभी बालक है। राक्षस माया से अपरिचित है। वे राक्षस कितने पराक्रमी हैं, किसके पुत्र हैं, उनका डील-डौल कैसा है, राम तो यह भी नहीं जानता और फिर हे मुनिवर! मैं राम के वियोग में दो घड़ियाँ भी जीवित नहीं रह सकता। अतः आप इस पर पुनर्विचार करें और राम के स्थान पर मैं अपनी सेवाएं देने को तैयार हूँ। मेरी अवस्था भी अब काफी हो गई है।

“आप तो यह भी जानते हैं कि मैंने कितनी कठिनाई से वृद्धावस्था में ये पुत्र पाए हैं।”

महाराज दशरथ की बात सुनकर विश्वामित्र ने कहा, “मैं आपकी बात समझता हूँ महाराज! पर आपको पहले तो यह बता दूँ कि महर्षि पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न विश्रवा पुत्र यह रावण एक राक्षस है, जिसे ब्रह्मा से यह वरदान है कि वह देवताओं, दानवों, दैत्यों, यक्ष, किन्नरों और गन्धर्वों से नहीं मारा जा सकता।

“यह कुबेर का भाई महाबली निशाचर स्वयं यज्ञ में विघ्न नहीं डालता, बल्कि इसकी प्रेरणा से मारीच और सुबाहु अपने दल बल के साथ आते हैं और यज्ञ में विघ्न डालकर चले जाते हैं।”

“तो फिर?” महाराज दशरथ ने कहा, “ऐसे भयानक राक्षसों से मेरा पुत्र राम कैसे टकराएगा? वह तो मारा जाएगा।

“नहीं महर्षि! नहीं, मैं अपने पुत्र को नहीं दूंगा। आप चाहें तो मैं चल सकता हूँ।”

महाराज दशरथ से अस्वीकार सुनकर मुनि विश्वामित्र को क्रोध आ गया।

महाराज दशरथ के प्रत्येक शब्द में अपने पुत्र के प्रति स्नेह भरा हुआ था। इससे कुपित होकर विश्वामित्र ने उनसे कहा—

“राजन! पहले प्रतिज्ञा करके उसे तोड़ रहे हो। क्या यही रघुकुल की रीति है? यदि तुम ऐसा करना चाहते हो तो ठीक है। मैं लौट जाता हूँ, लेकिन यह तुम्हारे कुल के विनाश का सूचक है।”

महर्षि वसिष्ठ ने जब मुनि विश्वामित्र का यह क्रोध देखा तो उन्होंने महाराज दशरथ से कहा, “राजन! महर्षि ठीक कह रहे हैं। आप व्रत-पालक हैं और आपको धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए। आपने उनकी इच्छित वस्तु देने का वचन दिया है, अब अस्वीकार करना आपको शोभा नहीं देता। आपको धर्म का पालन ही शोभा देता है। अतः श्रीराम को महर्षि विश्वामित्र के साथ भेजना ही श्रेयस्कर है।”

“क्या आप नहीं जानते कि महर्षि विश्वामित्र स्वयं साक्षात् अस्त्रों के भंडार हैं। त्रिलोक का कोई भी अस्त्र इनको परास्त नहीं कर सकता, चाहे वह ब्रह्मास्त्र हो या महादेव का पाशुपतास्त्र या भगवान नारायण का नारायणास्त्र।

“आपकी दृष्टि में राम भले ही अभी बालक है, लेकिन जिस प्रकार अग्नि द्वारा सुरक्षित अमृत पर कोई हाथ नहीं डाल सकता, उसी प्रकार कुशिक नंदन विश्वामित्र से सुरक्षित व्यक्ति का राक्षस कुछ नहीं बिगाड़ पाएंगे। इन्होंने तप के बल से ब्रह्म को प्राप्त किया है। ये तपस्या की खान हैं, साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं, विद्या में इनसे बढ़कर विश्व में कोई नहीं है। जिन अस्त्रों को ये जानते हैं, इनके सिवा दूसरा पुरुष न जानता है, नहीं जान पाएगा।

प्रायः सभी अस्त्र प्रजापति कृशाश्व के धर्मात्मा पुत्र हैं। प्रजापति ने विश्वामित्र को राज्य शासन करते हुए समर्पित कर दिया था।

“प्रजापति की दो पुत्रियां अनेक रूप वाली हैं। सब-की-सब महान! शक्तिशाली हैं। जया और सुप्रभा ने एक सौ परम प्रकाशमान अस्त्रों को उत्पन्न किया और ये सभी अस्त्र-शस्त्र महर्षि विश्वामित्र के आदेश पर उपस्थित होकर उनके आदेशानुसार कार्य करते हैं। जो अस्त्र अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं, उनका भी उत्पादन करने की उनमें अपूर्व क्षमता है।

“हे महाराज! मुनि विश्वामित्र के शिष्यत्व में रहकर राम का व्यक्तित्व उस प्रकार फौलादी हो जाएगा, जैसे सोना आग में तपकर कंचन हो जाता है।”

वसिष्ठ मुनि के इस प्रकार कहने पर महाराज दशरथ के भीतर का राजा जाग उठा और राष्ट्रहित के लिए उन्होंने राम को लक्ष्मण सहित राजसभा में बुलाया और प्रसन्नतापूर्वक माता-पिता

ने पुरोहित महर्षि वसिष्ठ द्वारा स्वस्ति वाचन के साथ महर्षि को सौंप दिया।

अब राम और लक्ष्मण महर्षि के साथ यात्रा पर चल दिए।

दोनों भाई पीठ पर तरकश बांधे थे, उनके हाथों में धनुष थे और वे विश्वामित्र के पीछे फणधारी सांप की तरह चल रहे थे।

सरयू नदी पर पहुंचकर महर्षि ने राम को आचमन कराते हुए सबसे पहला पाठ बला और अबला शक्ति मंत्रों का ज्ञान कराके दिया। इसके प्रभाव से शारीरिक थकावट तो होगी ही नहीं, न ही रूप में किसी प्रकार का विकार आया और सबसे बड़ी बात तो यह है कि सोते समय या असावधानी के समय राक्षस भी इनके ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस शक्ति का अभ्यास करने से राम तीनों लोकों में अद्वितीय हो जाएंगे।”

आचमन करके प्रसन्न मुख राम ने दोनों विद्याएं ग्रहण कीं। उस समय उनका मुख सहस्रों किरणों से युक्त शरदकालीन सूर्य के समान चमक रहा था।

यहां से ये लोग सरयू गंगा संगम के समीप पुण्य आश्रम में ठहरे।

प्रातःकाल नाव से गंगा पार की तो वह स्थल भी देखने को मिला, जहां भीषण शोर के साथ सरयू गंगा में आकर मिलती है।

गंगा पार करके जब वे आगे चलने लगे तो वहां एक भयानक वन मिला। जिसमें हिरण आदि पशुओं के अतिरिक्त सिंह और व्याघ्र जैसे हिंसक पशु भी थे। यहीं महर्षि ने राम को ताड़का नाम की राक्षसी का परिचय दिया, “मारीच इसी का पुत्र है। यह मारीच सदा ही यहां की प्रजा को कष्ट पहुंचाता है और ताड़का इस वन प्रदेश से लगे हुए जनपदों का विनाश करती है। छह कोस दूरी तक का यह मार्ग इस ताड़का के दुष्प्रभाव से ग्रस्त है। यह दूर-दूर तक अपना प्रभाव जताकर फिर इस वन में आकर छिप जाती है।”

विश्वामित्र ने राम से कहा—

“तुम्हें अपने बाहुबल का पहला प्रयोग यहीं करना है, इस ताड़का को मारकर।”

राम ने स्वयं को तैयार करके अपने हाथ में धनुष को जोर से पकड़ लिया और उसकी प्रत्यंचा पर तीव्र टंकार की। उससे उस वन में रहने वाले सभी प्राणी थर्रा उठे।

जब ताड़का ने वह टंकार सुनी तो वह बौखला उठी।

विकराल राक्षसी ताड़का को सामने देखकर राम ने कहा, “लक्ष्मण! देखो तो सही, इस यक्षिणी का शरीर कैसा दारुण और भयानक है। अपने मायाबल से यह कैसी दुर्जय हो रही है, लेकिन मैं अभी इसके नाक और कान काटकर इसे पीछे लौटने को विवश करता हूं।”

अभी राम कह ही रहे थे कि क्रोध में ताड़का वहां आ पहुंची।

जब वह राम के ऊपर झपटी तो विश्वामित्र ने हुंकारकर कहा, “रघुकुल के इन दोनों राजकुमारों का कल्याण हो।”

ताडका ने अपनी माया से धूल उड़ाते हुए क्षण-भर के लिए उन्हें भ्रम में डाल दिया और फिर उन पर पत्थरों की वर्षा करने लगी।

राम ने यह देखा तो उन्होंने ताडका के पत्थरों की वृष्टि रोककर उसके दोनों हाथ अपने तीखे बाणों से काट डाले।

अकस्मात् इस प्रकार अपने हाथ कट जाने से वह बौखलाकर और ऊधम मचाने लगी तो लक्ष्मण ने एक बाण से उसकी नाक और कान काट डाले।

लेकिन वह तो इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थी। अतः फिर से अनेक रूप बनाकर राम और लक्ष्मण को मोह में डालती हुई अदृश्य हो गई।

राम ने सोचा, 'यह अबला नहीं, इससे पहले कि यह अपनी माया से प्रकट हो, इसे मार डालना ही उचित है।'

विश्वामित्र ने उन्हें संकेत किया कि संध्याकाल से पहले ही इसका मर जाना ठीक होगा तो राम ने शब्दबेधी बाण से उस यक्षिणी को सब ओर से अवरुद्ध कर दिया।

बेबस ताडका ने राम और लक्ष्मण पर भारी आक्रमण कर दिया, लेकिन ये दोनों सतर्क थे। वेग से आती ताडका को देखकर राम ने एक बाण मारकर उसकी छाती चीर डाली और वह मायावी राक्षसी पृथ्वी पर गिरते ही प्राणहीन हो गई।

राम के द्वारा ताडका का वध हो जाने पर महर्षि ने अगले दिन प्रातः राम पर प्रसन्न होकर उन्हें दिव्यास्त्रों का दान किया तथा उनकी संहार विधि भी बताई। इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण उनके सिद्ध आश्रम में आ गए। यहीं मुनि को अपना यज्ञ सम्पन्न करना था।

रक्षा की सारी व्यवस्था राम को सौंपकर मुनि यज्ञ के लिए आसन पर बैठ गए। छह दिन और छह रात ये राजकुमार तपोवन की रक्षा करते रहे। सातवें दिन वे रक्षा में लगे हुए थे कि उन्होंने देखा, यज्ञ की वेदी सहसा प्रज्ज्वलित हो उठी अर्थात् राक्षस आ गए थे, जो यज्ञ को नष्ट करना चाहते थे। तभी मारीच और सुबाहु अपनी माया के साथ वहां आए, उनके साथ उनके अनुचर भी थे और यहां उन्होंने रक्त की धारा बरसाना आरम्भ कर दिया।

इससे पहले कि वे मुनि का यज्ञ नष्ट करें, एक बाण से राम ने मारीच की छाती को बेधकर पूरे सौ योजन दूर समुद्र के जल में गिरा दिया और फिर आग्नेयास्त्र का संधान करके सुबाहु को भी मृत्यु के घाट उतार दिया, जबकि उन दोनों राक्षसों के अनुचर भाग खड़े हुए।

सातवें दिन की समाप्ति पर मुनि का यज्ञ पूरा हो गया और जो उनका लक्ष्य था, उसकी सफलता पर उन्होंने राम को आशीर्वाद दिया और कहा—

“हे महाबाहो! मैं तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया। तुमने गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया है। आज तुमने इस सिद्धाश्रम का नाम सार्थक कर दिया।”

यह रात्रि मुनि के साथ राम और लक्ष्मण ने उस यज्ञशाला में ही बिताई।

प्रातःकाल आश्रम के मुनियों ने महर्षि से निवेदन किया कि मिथिला के राजा जनक का परम धार्मिक यज्ञ आरम्भ होने वाला है, उसमें उन्होंने सीता के विवाह के लिए स्वयंवर रचा है और उनकी प्रतिज्ञा है, “जो वीर इस शिव के धनुष को तोड़ देगा, उसी के साथ वे सीता का विवाह कर देंगे। अब तक कितने ही वीर दिग्गज वहां आ चुके हैं और अपना बल दिखा चुके हैं, लेकिन सुना है कि अभी तक किसी के द्वारा भी वह धनुष उठाया नहीं जा सका।

यह सुनकर महर्षि ने राम से कहा—

“हे नरश्रेष्ठ! अब तक तुम मेरी सेवा में थे। अब तुमने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है। अतः यदि इच्छा हो तो जनकपुर के महाराज का यज्ञ भी देख लिया जाए। इससे भ्रमण भी हो जाएगा और तुम क्षत्रिय हो, धनुष-यज्ञ में भी सम्मिलित हो सकते हो।

“अतः मेरा यही कहना है कि तुम हमारे साथ चलो।”

महर्षि विश्वामित्र ने राम को बताया कि यह शिव का धनुष महाराज जनक को किस प्रकार प्राप्त हुआ और वह कितना अद्भुत है।

“हे राम! मिथिला नरेश जनक ने यज्ञ के फलस्वरूप देवताओं से यह धनुष मांगा था और भगवान शंकर ने उनसे प्रसन्न होकर उन्हें यह प्रदान कर दिया था।

“जनक के महल में यह धनुष देवता की तरह प्रतिष्ठित है। अनेक प्रकार की धूप आदि से इसकी पूजा होती है।”

यह सुनकर राम और लक्ष्मण के मन में जनकपुरी जाने की इच्छा पैदा हो गई और उन्होंने महर्षि के साथ जाने का कार्यक्रम बना लिया।

सिद्धाश्रम से चलते हुए महर्षि ने वन देवताओं से कहा, “मैं अपना यज्ञ-कार्य पूरा करके इस सिद्धाश्रम से जा रहा हूं। गंगा के तट पर होता हुआ हिमालय की उपत्यका में जाऊंगा। आपका कल्याण हो।” फिर महर्षि विश्वामित्र आश्रमवासियों, राम और लक्ष्मण को साथ लेकर जनकपुरी की ओर चल दिए।

मार्ग में महर्षि विश्वामित्र अनेक स्थानों पर ठहरते हुए जब मिथिला पहुंचे तो जनकपुरी की शोभा देखकर वे उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

मिथिला के उपवन में एक पुराना आश्रम था, जो कभी अतिरमणीय था, लेकिन आज सूना दिखाई दे रहा था। इसे देखकर राम ने मुनि से पूछा, “हे महात्मन्! यह कैसा स्थान है, जो देखने में तो आश्रम जैसा दिख रहा है, किन्तु यहां तो कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। यह उजड़ आश्रम किसका है?”

“राम! बहुत पहले यहां गौतम मुनि अपनी पत्नी अहिल्या के साथ रहते थे। उन गौतम मुनि ने क्रोधपूर्वक अपनी पत्नी को शाप दे दिया। तब से यह उजाड़ हो गया है, लेकिन यह सदा से ऐसा नहीं था। यह दिव्य आश्रम था। मुनि ने यहां वर्षों तक पूजा की।

फिर दुर्भाग्य से एक दिन जब महर्षि गौतम आश्रम में नहीं थे तो देवराज इन्द्र गौतम मुनि का वेश बनाकर यहां आए और अहिल्या से बोले, 'हे सुंदरी! रति की इच्छा रखने वाले प्रार्थी पुरुष ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते। हे सुन्दर कटि प्रदेश वाली नारी! मैं तुम्हारे साथ समागम करना चाहता हूं।'

“अहिल्या गौतम का वेश धारण किए इन्द्र को पहचानकर भी मोहासक्त हो गई और यह जानकर कि देवराज इन्द्र उसे चाहते हैं, वह उनके साथ समागम के लिए तैयार हो गई।

“समागम के पश्चात् अहिल्या ने देवराज इन्द्र से कहा, 'हे सुरश्रेष्ठ! आपके समागम से मैं कृतार्थ हो गई। आज बहुत समय के बाद मैंने यह समागम सुख प्राप्त किया है। हे देवेश्वर! अब आप यहां से शीघ्र चले जाइए, क्योंकि महर्षि गौतम यदि आ गए तो समझ लीजिए कि मेरा और आपका दोनों का अनिष्ट हो जाएगा।'

“अहिल्या का यह भय और संकोच देखकर इन्द्र ने कहा, 'ठीक है देवी! मैं भी संतुष्ट हो गया।' यह कहते हुए वे कुटिया से बाहर आ गए और जैसे ही वे बाहर निकले, गौतम मुनि के आने की आशंका से भयभीत वे भागने का यत्न करने लगे।

“इतने में इन्द्र ने देखा, तपोबली महामना गौतम हाथ में समिधा लिये हुए आश्रम की ओर आ रहे हैं, उनका शरीर जल से भीगा हुआ है और प्रज्ज्वलित अग्नि के समान दीप्त हो रहा है।

“मुनि को देखते ही इन्द्र भय से थर्रा उठे।

“और जब मुनि गौतम ने इन्द्र को अपना ही छद्म वेश धारण किए देखा तो रोष में भरकर कहा, 'हे दुर्बुद्धि! तूने मेरा रूप धारण करके जो पापकर्म किया है, उसके कुफल के रूप में तू अण्डकोष रहित हो जाएगा।'

“मुनि के ऐसा कहते ही इन्द्र के अण्डकोष उसी क्षण पृथ्वी पर गिर पड़□।

“गौतम मुनि ने अपनी पत्नी अहिल्या को शाप देते हुए कहा—

‘दुराचारिणी! तू भी यहां कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर उपवास करती हुई, कष्ट उठाती राख में पड़□ी रहेगी। तू समस्त प्राणियों से अदृश्य इस आश्रम में निवास करेगी।’

“अहिल्या यह सुनकर मुनि से क्षमायाचना करने लगी और बोली, 'हे मुनि! जो कुछ भी हुआ है, आपके रूप में हुआ है। मैंने आपके ही सम्मुख समर्पण किया है। मुझे क्षमा करें देव!'

“मुनि ने तब विचारकर कहा, 'जब दशरथ कुमार राम इस वन में पदार्पण करेंगे तो उनका अतिथि सत्कार करने से तुम्हारे लोभ, मोह आदि दोष दूर हो जाएंगे। तब पवित्र होकर तुम मेरे पास पहुंचकर अपना पूर्व शरीर धारण कर लोगी।'

“अहिल्या से इस प्रकार कहकर वह महातेजस्वी मुनि गौतम इस आश्रम को छोड़□कर हिमालय के रमणीय शिखर पर तपस्या करने के लिए चले गए।

“इन्द्र अण्डकोष से रहित होकर बहुत डर गए। उनके नेत्रों में रोष छा गया, फिर भी उन्होंने

देवताओं से कहा कि महात्मा गौतम की तपस्या में विघ्न डालने के लिए मैंने उन्हें क्रोध दिलाया था।

“मुनि ने क्रोध में मुझे अण्डकोष से रहित कर दिया और अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया। ऐसा करते हुए मैंने देवताओं का हित ही किया है।

“इन्द्र से यह सुनकर मारुतगण सहित अनेक देवताओं ने पितृदेव से यह निवेदन किया कि उनको भेड□ों के अण्डकोष दे दिए जाएं। पितृदेवों ने इन्हें इन्द्र को दे दिया। तभी से वहां आए हुए समस्त पितृदेवता अण्डकोष रहित भेड□ों को ही उपयोग में लाते हैं।”

महर्षि विश्वामित्र से अहिल्या के शाप की यह कथा सुनकर राम देवी अहिल्या के आश्रम में पधारे।

वहां अहिल्या अपनी तपस्या से दैदीप्यमान हो रही थी, लेकिन वह सबके लिए अदृश्य थी और केवल राम ही उसे देख सकते थे।

अहिल्या का स्वरूप विधाता ने बड□ प्रयत्नों से निर्मित किया था। इस समय राम को वह प्रज्वलित अग्नि शिखा-सी जान पड□ी।

राम का दर्शन मिल जाने से अहिल्या के शाप का अन्त हो गया।

उस समय श्रीराम और लक्ष्मण ने बड□ी प्रसन्नता के साथ अहिल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया और महर्षि गौतम के वचनों का स्मरण करके अहिल्या ने बड□ी सावधानी से उन दोनों भाइयों को आदरणीय अतिथि के रूप में स्वीकार किया तथा उनका अतिथि सत्कार किया।

महर्षि गौतम के अधीन रहने वाली अहिल्या अपनी तपोशक्ति से विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुई।

इस प्रताप से महातपस्वी गौतम भी अहिल्या को अपने साथ पाकर सुखी हो गए।

अहिल्या का उद्धार करके राम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ गौतम आश्रम से ईशानकोण की ओर चले तथा मिथिला नरेश महाराज जनक के यज्ञमंडप में जा पहुंचे।

यज्ञमंडप में पहुंचकर राम और लक्ष्मण ने वहां की शोभा देखकर आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता का अनुभव किया।

राम ने कहा, “हे महाभाग! महात्मा जनक के यज्ञ का समारोह तो बड□ी भव्य और सुन्दर दिखाई पड□ रहा है। यहां तो अनेक प्रकार के अतिथि, ब्राह्मण आदि उपस्थित हैं। आप भी ऐसा कोई स्थान निश्चित कीजिए, जहां हम लोग ठहर सकें।”

राम की यह बात सुनकर महामना विश्वामित्र ने जल-सुविधासम्पन्न एक एकान्त स्थान में अपना डेरा डाल लिया।

इधर जब महाराज जनक को यह ज्ञात हुआ कि उनके यज्ञ में महर्षि विश्वामित्र स्वयं पधारे हैं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने राजपुरोहित गौतम पुत्र शतानन्द को आगे करके उनका स्वागत करने चल दिए।

महाराज जनक के साथ अर्घ्य लिए महात्मा ऋत्विज भी आगे चले।

महाराज जनक ने विनम्र भाव से आगे बढ़कर महर्षि विश्वामित्र की अगवानी की और उन्हें अर्घ्य समर्पित किया।

महर्षि ने राजा जनक की पूजा ग्रहण की और उनके कुशल समाचार पूछे। ऋषि के साथ जो मुनि उपाध्याय आए थे, उन सबका स्वागत किया।

इसके पश्चात् महाराज जनक ने विश्वामित्र से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि वे आसन पर विराजमान हों।

यह बात सुनकर मुनि विश्वामित्र आसन पर बैठ गए। इसके बाद फिर पुरोहित आदि ने भी अपना आसन ग्रहण किया।

महाराज जनक के यज्ञ-दीक्षा के बारह दिन शेष थे, अतः उन्होंने निवेदन किया कि हे महर्षि! बारह दिनों के बाद यहां यज्ञभाग ग्रहण करने के लिए आए हुए देवताओं का दर्शन करें।

ऋषि ने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया।

तभी लौटते हुए महाराज जनक ने महर्षि से पूछा, “हे महर्षि! आपके साथ ये दो सुन्दर राजकुमार कौन हैं?”

महर्षि ने हंसते हुए कहा, “राजन! ये अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं।

“मेरे सिद्ध आश्रम के यज्ञ में इन्होंने ही भयानक राक्षस सुबाहु और मारीच का वध किया और ताड़का को भी मौत के घाट उतार दिया। इन्हीं के बलस्वरूप मेरा यज्ञ पूर्ण हो सका।

“ये अमित तेजस्वी हैं महाराज! तीनों लोकों में ऐसा कोई अस्त्र या युद्धविद्या का दर्शन नहीं है, जिसमें राम पारंगत न हों।”

मुनि ने यह भी बताया कि सिद्ध आश्रम के बाद जब वे यज्ञ पूर्ण करके मिथिला के लिए आ रहे थे तो मार्ग में इन्होंने ही देवी अहिल्या का उद्धार किया।

मुनि शतानन्द ने जब माता अहिल्या के उद्धार की बात सुनी तो उन्हें रोमांच हो आया। ये गौतम के ज्येष्ठ पुत्र थे।

ये तो राम के दर्शन मात्र से ही विस्मृत हो गए

उत्सुकतावश शतानन्द ने महर्षि से कई प्रश्न एक साथ पूछ डाले कि मेरी माता बहुत दिनों से तपस्या कर रही थी, क्या आपने राम को उनके दर्शन कराए? राम का मां ने पूजन आदि किया? क्या राम से आपने माता के प्रति देवराज इन्द्र की छल की गाथा का वर्णन किया। क्या मेरे पिता ने राम का पूजन किया था?

महर्षि विश्वामित्र ने कहा, “हे वत्स! तुम्हारी माता राम के दर्शन से उनका अतिथि सत्कार

करके पूर्ण विशुद्ध व पवित्र होकर तुम्हारे पिता से जा मिली हैं।”

यह सुनकर पुत्र को अपनी माता के संकटमुक्त होने से अत्यन्त सुख मिला।

वे जान गए थे कि महर्षि विश्वामित्र के कर्म अचिन्त्य हैं। इन्होंने तपस्या से ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया है। इस पृथ्वी पर राम से बढकर धन्य पुरुष और कौन होगा, जिसे कुशिक नंदन का संरक्षण मिला।

इसके पश्चात् महर्षि शतानन्द ने राम को महर्षि विश्वामित्र के गुणों से परिचित कराया और यह बताया कि किस प्रकार इन्होंने महर्षि वसिष्ठ की चुनौती स्वीकार करके पहले राजर्षि, फिर देवर्षि और फिर ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया।

शतानन्द मुनि के द्वारा महर्षि विश्वामित्र का परिचय कराने के बाद महाराज जनक ने मुनि से कहा—

“हे मुनिवर! आप राम और लक्ष्मण के साथ मेरे यज्ञ में पधारें, इससे मैं धन्य हो गया। आपने मुझ पर बढकी कृपा की।”

“हे देव! आपकी तपस्या अप्रमेय है, बल अनन्त है, गुण वर्णन से परे हैं, परन्तु इस समय यज्ञ का समय हो गया है। सूर्यदेव ढलना चाहते हैं। कल प्रातःकाल पुनः दर्शन होंगे।” इस प्रकार कहते हुए महाराज जनक ने विश्वामित्र से विदा ली।

प्रातःकाल नित्यकर्म करने के पश्चात् राम और लक्ष्मण ने मुनि की आज्ञा से भ्रमण करने हेतु जनकपुरी के राजभवन की पुष्प वाटिका देखने का प्रस्ताव रखा।

महर्षि मुस्कराए और उन्हें पुष्प वाटिका जाने की आज्ञा दी। उद्देश्य यह भी था कि वे सुन्दर पुष्प वाटिका से महर्षि की पूजा के लिए फूल ले आएंगे।

राम और लक्ष्मण पुष्प वाटिका के बहाने महाराज जनक की राजधानी नगरी को देखते हुए आगे बढ चले। इसकी शोभा आंखों को सुख देने वाली थी।

नगर की पूर्व दिशा में ब्रह्म द्वार था, जहां भांति-भांति के पुष्प खिले हुए थे और देखकर ऐसा लगता था मानो यह द्वार संसार के चलने वाले नाटक का सूत्रधार है।

इस आर्य नगरी को देखते हुए तो कोई भी सहज हृदय व्यक्ति कल्पना के संसार में खो सकता है। यह सुन्दर नगरी राम और लक्ष्मण को बढकी रहस्यमयी लगी। यह पूर्व द्वार कितना शक्तिशाली है, शिल्प विद्या का सार यहां दिखाई पडता है। जिस किसी ने भी पूर्व दिशा से जनकपुरी पर आक्रमण की ठानी, यहां अनेक शत्रुओं को मुंह की खानी पडती। इसके प्राचीर आर्य संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का प्रतीक बने हुए हैं। जहां सुन्दर दुर्ग हैं और जिसके भीतर प्रवेश करते हुए महाराज जनक के शत्रु भय से कांपते हैं।

और आगे बढने पर नगर की भवन अट्टालिकाएं तो दिखाई दे ही रही थीं। यहां से आगे वे दक्षिण द्वार की ओर चल दिए।

एक तरफ पूर्व का ब्रह्म द्वार सुन्दर दिखाई देने वाला, उत्पत्ति तत्वों का पसारा फैलाता हुआ दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर नए-नए रसों की संगीत लहरी की तान छेड़ने वाला यह दक्षिण यम द्वार है। जहां क्षुब्ध नदी शान्त होकर बहती है और इसके प्रभाव से यह नगरी निर्भय बनी हुई है।

इसी प्रकार पश्चिम द्वार की शोभा भी बड़ी निराली दिख रही थी।

इस नगर का उत्तरी द्वार, जिसे कार्तिकेय द्वार भी कहा जाता है, यहां महाराज जनक की राजपताका फहराती है।

नगरी के चारों द्वारों पर भ्रमण करते हुए राम और लक्ष्मण सुन्दरता की प्रतिमूर्ति इस नगरी के हरित परिधान की ओर आगे बढ़े, जहां चारों तरफ हरियाली-ही-हरियाली दिखाई पड़ रही थी। खेतों में फसलें लहलहा रही थीं। कहीं गौएं चर रही थीं और कहीं खेतों में हल चल रहे थे। यहां से आगे बढ़कर वे उस सुन्दर उपवन में आ गए, जिसे महाराज ने पुष्प वाटिका के रूप में जनकपुरी की शोभा बना रखा है।

यहां चारों ओर सुन्दर सजी हुई क्यारियां थीं। अशोक वे दूसरे अन्य वृक्ष और उनके नीचे छायादार स्थलियां मानो राहगीर यहां कुछ देर विश्राम करते हों।

राम और लक्ष्मण भी इस नगरी का भ्रमण करके कुछ थकान अनुभव कर रहे थे, इसलिए एक छोटे से आसन पर वे लोग वहां बैठ गए।

राम सोच रहे थे कि यह जनक नगरी कैसी धीर गंभीर और रमणीय है। साक्षात् सुख और सम्पत्ति का धाम बनी हुई है। यहां के वासी कितने शान्त और ईश्वर विश्वासी हैं। कहीं भी किसी प्रकार की कोई दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्तियों के दर्शन उन्हें नहीं हुए।

यहां तो चित्त वृत्ति ही बदल गई। एक प्रकार से यह नगरी वास्तव में धरती का स्वर्ग-सी दिखाई पड़ रही थी। बड़ी-बड़ी ऊंची अट्टालिकाएं, भवन आदि शिल्पकला के उदाहरण थे। नगर के बड़े-बड़े गड्ढों के बीच यह पुष्प वाटिका कितनी सुन्दर और शोभायमान लगती है। चारों ओर बना राजमार्ग, उस पर मंत्रोच्चारण करते हुए ब्राह्मणों की कतारें, जो प्रातःकाल जनकपुर की परिक्रमा करते हैं। यहां सभी लोग प्रतिदिन भ्रमण करते हैं और इस पुरी की परिक्रमा करते हैं।

वृक्षों की डालियां फूलों से लदी हुई हैं। बड़े-बड़े राजमार्ग व्यापारियों के लिए आने-जाने का मार्ग बने हुए हैं। नित्यप्रति यह मार्ग जलकणों से सींचा जाता है। ऐसा लगता है मानो इस पृथ्वी पर आकाशगंगा उतर आई हो। रथ के आवागमन से यह मार्ग व्यस्त रहता है। घोड़ों की टापों की आवाजें सुनाई पड़ती हैं।

इस सबसे परे यह रमणीय उद्यान, जिसकी अनुपम शोभा हरी-भरी लताओं से लदी, धीरे-धीरे चलती हुई हवा और उनसे जब कोमल कलियां और पल्लव हिलते हैं तो पूरे वातावरण को सुगंध से भर देते हैं।

राम और लक्ष्मण इन्द्र के नंदन वन के समान सुशोभित इस सुन्दर वाटिका में आए तो सोचने लगे कि जनकपुर की यह वाटिका विहार के लिए कितना सुन्दर स्थान है।

राम और लक्ष्मण को वहां बैठा हुआ देखकर भ्रमण के लिए आए हुए नर-नारी यह सोचने लगे कि अब कहीं और जाने की आवश्यकता क्या है, जबकि त्रेतायुग की माधुरी ही यहां विद्यमान है।

हर डाली अपने मधुर स्वर से गुंजायमान लग रही थी।

हर क्यारी मधुरस से भरी हुई सलोनी लग रही थी मानो पृथ्वी की सारी सुन्दरता यहां आकर सिमट गई हो।

भवरों की झनकार पुष्पों के आस-पास मंडरा रही थी।

यहां वृक्षों के बीच घनी छाया वाले ऐसे खुले स्थल थे, जो राही को वहां बैठने पर घर के सुख जैसे आनन्द देने वाले थे। किनारे-किनारे सुन्दर जल वाली बावडियां और सरोवर, उनमें खिले कमल मानो नवल प्रेमी और प्रेमिकाओं को आमंत्रित करते हों। इसी सुन्दरता का रसपान करने के लिए नई नवेली नारियां अपनी गोरी बांहों में जल-कलश लिये जिस मतवाली चाल से चलती थीं, वह सौन्दर्य देखने वाला था।

यहां प्रातः-सायं नगरवासी भक्तिभाव से, शान्ति की इच्छा से इस प्रकार दौड़-चले आते थे मानो बछड़ों अपनी गाय से मिलने के लिए आकुल रास्ता छोड़कर दौड़-पड़।

अभी वे इस वाटिका के अप्रतिम सौन्दर्य को निहार रहे थे कि तभी उन्हें मधुर पैजनियों की झंकार सुनाई दी और उन्होंने देखा कि दो राजकुमारियां अपनी सखियों के साथ इस पुष्प वाटिका में पूजा के फूल चुनने के लिए आ रही हैं। उन्हें देखकर क्षणभर को ऐसा लगा मानो प्रातः की हवा से दो छोटी कलियां छिटक गई हों। उनके मुखमंडल पर लज्जा का भाव था, आंखें नीचे झुकी थीं और देखकर यह लगता था कि अवश्य ही ये महाराज जनक की पुत्रियां हैं।

राम को लगा...हो-न-हो, ये गौरवर्ण की दाहिनी ओर वाली कन्या जिसका विराट मस्तक है, दिव्य तेज और मुखमंडल पर सूर्य कैसी आभा उसके सीता होने का आभास दिला रही थी और उसके साथ बाई ओर अवश्य ही महाराज जनक की दूसरी पुत्री होगी।

राम और लक्ष्मण ऐसे स्थान पर बैठे थे, जहां से वे वाटिका में होने वाले सारे घटनाक्रम को अपनी आंखों से देख सकते थे और उन्हें केवल वही देख सकता था, जो देखने की लालसा रखता हो।

ये बाल मुग्धाएं अपनी सुन्दर छवि के साथ धीरे-धीरे चरण बढ़ाती हुई पुष्प लतिका के पास खड़ी हो गईं।

यहां से राम सीधे सीता को देख सकते थे।

काले-काले लंबे केश, सुती हुई नाक, चंचल किन्तु गंभीर भाव प्रकट करने वाले नेत्र, पतली गर्दन, उन्नत वक्ष, लचीली पतली कमर और पुष्ट नितम्ब क्षेत्र, कदली जंघाएं, सपाट और पुष्ट

हाथ मानो साक्षात् रति अभिसार के लिए इस कंचन कानन में आई है और पुष्प से उठने वाली गंध पूरे वातावरण को मादक बना रही है।

ये दोनों कन्याएं महाराज जनक के आंगन के दो मूल्यवान मोती हैं और ऐसा लगता था मानो जुड़वां बहनें हों। इनके ललाट पर जो प्रखर तेज झलक रहा था मानो ये दामिनी की किरण हों।

माथे पर बालों की गिरती लटें जब बार-बार उड़कर आतीं तो सुन्दरता को और अधिक बढ़ा जातीं। अपनी मां की ये लाडलियां कितनी भोली लग रही थीं, जैसे सरोवर के किनारे हंसिनी हों।

हंसते हुए जब इनके दांतों की पंक्तियां झलकती थीं तो ऐसा लगता था मानो कली-कली खिल गई हो।

सीता के साथ उर्मिला भी आगे-आगे बढ़ती हुई चल रही थी। इस सौन्दर्य को देखकर किसका मन करेगा कि वह यहां से जाए। उनके गोल-गोल गालों की लालिमा मानो विधाता ने सारी कोमलता इन्हीं में समाहित कर दी हो और हल्की-सी हंसी ऐसी लग रही थी, जैसे किसी ने अमृत का पात्र उड़ल दिया हो।

भ्रमण करते हुए सीता ने देखा और अनुभव किया कि दो जोड़ी आंखें उन्हें बहुत देर से देख रही हैं। आज प्रातःकाल उन्हें महाराज जनक को माता सुनयना से बात करते हुए यह सुना तो था कि महर्षि विश्वामित्र के साथ अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण भी यज्ञ में पधारे हैं और जब सामने इन दो धनुर्धारियों की झलक उन्हें देखने को मिली तो वे क्षण भर को चकित होकर रह गईं।

यही दशा कुछ-कुछ राम की भी थी।

सीता को अपनी ओर कनखियों से देखते हुए राम अपने माथे पर पसीने की बूंदें अनुभव करने लगे। जैसे ही वे पीछे को हटे, उनका पैर एक झाड़ में अटक गया और एक फूल उनका माथा छूते हुए उनके पैरों पर आ गिरा। ऐसा लगा मानों सीता ने संकेत रूप में इस फूल के माध्यम से अपना प्रणाम भेजा है।

राम को गिरे देख साथ की सखियां ठहाका मारकर हंस पड़ीं तो उर्मिला ने उन्हें डांटते हुए कहा—

“यह अच्छा लगता है कि आप किसी पर इस प्रकार हंसें!”

सीता नजरे झुकाए एक मूर्तिमान-सी खड़ी रहीं।

सीता के लिए यह पहला अनुभव था, जब अपने सम्मुख किसी पुरुष को देखकर उनके हृदय में एक कंपकंपी-सी हुई। सारा शरीर रोमांचित हो गया मानो दर्शनों में ही दृष्टि तरंगों के रूप में उन्हें पूरी तरह आलोडित कर दिया हो।

फिर पीछे से उर्मिला ने मुस्कराते हुए कहा, “चलो दीदी! पूजा को देर हो रही है।” और उसके

गले में अपनी लुनाईदार गोरी बांहें डाल दीं।

सीता के माथे की लटें झटके से उनके चेहरे पर आ गईं।

राम के लिए यह पहला अनुभव था।

लक्ष्मण जानते थे कि भैया राम सीता को देखकर मुग्ध हो रहे हैं। उनकी आंखों में प्रेमरंग तरंगें ले रहा है और हृदय में भावना जागृत हो रही है। फिर भी उन्होंने इस मूक संवाद में व्यवधान पैदा करते हुए राम से कहा, “चलिए भैया! महर्षि की पूजा का समय हो रहा है।”

राम की यह दशा बड़ा विचित्र थी-कदम उठाना नहीं चाहते थे और समय रुकने का नाम नहीं ले रहा था।

सीता ने जब यह देखा तो वे मन-ही-मन स्पंदित होने लगीं।

अब सीता की आंखों में आंसू आ गए। भागीरथी नदी के तट पर एकान्त में अकेली खड़ी सीता सोच रही थीं, उन पलों के बारे में कितने सुखदायी थे वे पल। आज भी याद करती हैं तो लगता है कि अभी कल ही की बात है। कंधे पर धनुष- बाण रखे, कमर पर तरकश सजाए, तेजस्वी ललाट वाले श्रीराम किस बेकली में द्वन्द्व से जूझ रहे थे।

आखिरकार समय को देखते हुए मन की कोमल भावनाओं पर विजय पाते हुए लौट गए थे श्रीराम और वे देखती रह गई थीं उनके लौटते कदमों को।

कुछ कदम चलने के बाद जब राम ने पीछे मुड़कर देखा तो सीता अब भी वहीं खड़ी थीं।

सीता सोच रही थीं, क्या हो गया था उन्हें उस समय? उर्मिला के कहने पर भी उनके कदम मानो जड़ हो गए हों, धरती ने उन्हें पकड़ लिया हो।

तब न वे अपने प्रियतम को पुकार सकीं और न पीछे लौट सकीं।

“दीदी! चलिए। अब वे चले गए। यदि उनमें बल होगा तो धनुष भंग करके तुम्हारा वरण कर लेंगे। तुम वीर्य शुल्का हो, जिसमें क्षत्रिय पराक्रम है और जो धनुर्विद्या का पुजारी है, वही शिव-धनुष तोड़ सकता है।

“यह तो किसी राजा के राजकुमार हैं, पिछले कितने ही दिनों से यह खेल देख रही हूं। कितने बड़ा-बड़ा राजा आए, पुरुषार्थी, पराक्रमी, महाबली किन्तु भगवान महादेव का यह धनुष उनसे हिल भी नहीं सका।”

“तब तो मुझे मां भगवती की पूजा करनी चाहिए।”

“इसलिए कि तुम्हें ये श्यामल राजकुमार भा गए हैं?”

“चल हट, बहुत बोलने लगी है।”

और फिर सीता अपनी सखियों के साथ उर्मिला को लिये मंदिर में आ गईं, जहां उन्हें अपनी

नित्य पूजा करनी थी।

मंदिर में मां भगवती के सामने पुष्प-हार समर्पित करते हुए हाथ जोड़□, आंखें मूंदे सीता मौन खड□ी हो गई। बहुत देर तक वे मन-ही-मन प्रार्थना निवेदन करती रहीं। कुछ देर बाद देवी के सामने जल छिड□काव करने के बाद मूर्ति की परिक्रमा करते हुए जब वे फिर अपने स्थान पर आई और फिर से पुष्प अर्पित करते हुए मां भगवती के चरण छूकर उनके चरणों में बैठ गई तो एक साथ उनके हाथ में दो फूल गिर पड□।

उर्मिला चंचल थी। वह पूजा के बीच में ही बोल पड□ी।

“जीजी! मां भगवती ने तुम्हें यह दो फूल किसलिए दिए? तुमने तो वरदान एक के लिए मांगा था।”

सीता ने हंसकर उसे उत्तर दिया—

“एक तेरे लिए है पगली! क्यों, क्या तू मेरे साथ वाटिका में नहीं थी? क्या गोरे और सलौने जो दूसरे राजकुमार थे, वे बार-बार कनखियों से तेरी ओर नहीं निहार रहे थे?”

उर्मिला ने लजाते हुए कहा, “जीजी! तुम भी बड□ी वह हो।”

“क्यों, इतनी देर से मुझे खिझा रही है, तब कुछ नहीं? मैंने एक छोटी-सी चुटकी ली तो झेंप गई। जब अपने पर पड□ती है बहन तो ऐसा ही होता है।”

सीता का पूरा शरीर कांप गया। वास्तव में चौदह वर्ष का वनवास काल उन्होंने राम के साथ बिताया है और इस समय जबकि उनके वियोग के दिन आए हैं तो वे विचलित हो रही हैं। उन्हें आज अनुभव हुआ कि बेचारी उर्मिला, उसकी सारी चंचलता एकांकी जीवन के बंद झरोखों के भीतर सिमटकर रह गई, जो हंसना भी भूल गई। कैसा कष्टकारी जीवन भोगा है उसने।

उर्मिला ने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि उसका भावी जीवन घोर अकेलेपन का अभिशाप बनकर रह जाएगा।

दो क्षण रुककर सीता ने भागीरथी में अपनी परछाई देखते हुए अंजलियों से दो घूंट पानी लेकर अपनी आंखों पर डाला। कुछ बूंदें पीं और कुछ सिर से लगाकर जल की आराधना की और सामने वृक्षों के नीचे मौन प्रतिमा-सी बैठ गई।

धनुष-यज्ञ और सीता-विवाह

राम महर्षि के लिए पूजा के फूल लेकर आश्रम पहुंचे। महर्षि तो जहां पहुंचते हैं, वहीं आश्रम हो जाता है। अतः महाराज जनक ने जिस स्थान पर इन्हें ठहराया, वहीं महर्षि के तप और बल से आश्रम सुगंध देने लगा।

दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ करके महर्षि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण सहित यज्ञमंडप में पहुंचे, क्योंकि महाराज के सेवक पहले ही उन्हें आकर यज्ञमंडप में पधारने का निवेदन कर गए थे।

यज्ञ मंडप में पहुंचकर जब महाराज जनक ने विश्वामित्र का स्वागत किया तो महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए और महाराज के द्वारा यह पूछे जाने पर कि मैं आपकी क्या सेवा करूं? महर्षि ने कहा, “राजन! महाराज दशरथ के ये दोनों पुत्र महान धनुर्धारी और अद्वितीय क्षत्रिय वीर हैं। आपके यहां जो महादेव का धनुष रखा है, ये उसे देखना चाहते हैं।”

“आपका कल्याण हो, वह धनुष इन्हें दिखा दीजिए। फिर ये दोनों कुमार उस धनुष के दर्शन से संतुष्ट होकर इच्छानुसार अपनी राजधानी लौट जाएंगे।”

और फिर महाराज जनक ने उन्हें धनुष-गाथा सुनाते हुए कहा—

“हे महर्षिराज! निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात के नाम से विख्यात थे। उन्हीं महात्मा के हाथ में यह धनुष धरोहर के रूप में दिया गया था।”

इसके लिए यह प्रसिद्ध है कि प्रजापति दक्ष के विध्वंस के समय महादेव शंकर ने इस धनुष को हाथ में उठाकर देवताओं से कहा था—‘देवगण! मैं यज्ञ-भाग प्राप्त करना चाहता था, लेकिन तुम लोगों ने प्राप्त नहीं करने दिया। इसलिए इस धनुष से मैं तुम लोगों के परम पूजनीय श्रेष्ठ अंग-मस्तक काट डालूंगा।”

“क्रोधी महादेव के मुख से यह बात सुनकर देवता उदास हो गए और फिर यह जानकर कि शंकर भोलेनाथ हैं, पूजा स्तुति से प्रसन्न हो जाते हैं। अतः सब देवों ने महादेव को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति-गायन प्रारम्भ कर दिया।”

“महादेव प्रसन्न हो गए। प्रसन्न महादेव ने यह धनुष देवों को अर्पित कर दिया। यही धनुष मेरे पूर्वज देवरात के पास धरोहर के रूप में रखा गया था। आपको तो ज्ञात ही है, भूमि-पूजन यज्ञ के लिए मैं भूमि-शोधन करते समय जब खेत में हल चला रहा था, उसी समय हल के अग्रभाग से जोती गई भूमि से यह कन्या प्रकट हुई। मैंने हल द्वारा खींची गई रेखा से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम सीता रख दिया। यह मेरी अयोनिजा कन्या थी। पृथ्वी से प्रकट हुई यह कन्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती धीरे-धीरे सयानी हो गई।

“एक दिन मैंने देखा कि जिस कक्ष में धनुष रखा था, वहां सफाई करते हुए इसने धनुष को

उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दिया और वह जगह जहां यह रखा हुआ था, भली प्रकार साफ करके धनुष को फिर उसी पुराने स्थान पर रख दिया। शायद तब मेरी मति मारी गई थी, जो मैंने अपनी पुत्री का साहस देखकर इसे वीर्य शुल्का बना दिया और यह प्रतिज्ञा की कि जो कोई वीर इस धनुष की प्रत्यंचा खींचेगा, उसी के साथ मैं इसका विवाह करूंगा।

पृथ्वी के अनेक राजाओं ने जब सीता के विशेष गुणों के बारे में सुना, इसकी सुन्दरता की चर्चा सुनी तो कई राजाओं ने इसके साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रखा।

मैंने उन सभी प्रस्ताव करने वाले राजाओं को यह बता दिया कि मेरी पुत्री वीर्य शुल्का है। इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने पर ही कोई इससे विवाह कर सकता है। तब से अब तक कितने ही राजा आए, पर प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर धनुष को हिला तक नहीं सके। अतः तब से अब तक यह कुंवारी कन्या मेरे घर में है। इसका विवाह नहीं कर सका।

“जब विवाह के इच्छुक राजाओं को मैंने धनुष की प्रत्यंचा न चढ़ा पाने के कारण अयोग्य जानकर उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो अपने पराक्रम को दिखाने के लिए संयुक्त रूप से मिथिला को घेरकर खड़ हो गए और हमारे सामने एक समस्या बन गई। हे मुनिश्रेष्ठ! यह युद्ध वर्ष भर चला। मेरे सारे साधन क्षीण हो गए। तब मैंने तपस्या के द्वारा समस्त देवताओं को प्रसन्न किया। देवों की सहायता से वे सभी राजा जो वास्तव में बलहीन थे, भय से भाग खड़ हुए।”

धनुष को दिखाते हुए महाराज जनक ने महर्षि विश्वामित्र से कहा, “हे मुनिश्वर! यही वह परम प्रकाशवान धनुष है, जिसे मैं राम और लक्ष्मण को भी दिखाऊंगा। यदि राम ने इसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी तो मैं अवश्य उनके साथ सीता का विवाह कर दूंगा।”

महर्षि विश्वामित्र ने राम को संकेत से पास बुलाया और कहा, “देखो वत्स! इस भारी संदूक पर यह विशाल धनुष रखा हुआ है। यह समस्त राजाओं द्वारा सम्मानित धनुष है। इसका जनकवंशी नरेशों ने सदा ही पूजन किया है तथा जो इसे उठाने में समर्थ न हो सके, इसकी प्रत्यंचा देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग कोई नहीं चढ़ा सका। मनुष्यों में तो इसे हिलाने की भी शक्ति नहीं है।”

महर्षि की आज्ञा से राम ने उस पेटिका में रखा हुआ वह धनुष देखा और मुनि को प्रणाम करते हुए कहा, “आशीर्वाद दें मुनिवर! मैं इस दिव्य और श्रेष्ठ धनुष को हाथ लगाता हूँ। इसे उठाने का ही नहीं, बल्कि इसकी प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयास करूंगा।”

‘तुम्हें यही करना है वत्स!’ मानो मुनि कह रहे थे, ‘तुम्हें मैं इसी उद्देश्य से लाया था कि तुम संयुक्त आर्यावर्त के प्रतीक पुरुष बन सको। अयोध्या और मिथिला राज्य मिलकर संयुक्त आर्यावर्त की एकसूत्रता को बताने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।’

और धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने से पूर्व महर्षि को प्रणाम करते हुए राम सोच रहे थे, “मेरी भी यही अभिलाषा है कि मैं उस सुमुखि का वरण करूँ, जिसे आज मैंने प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में देखा था और जिसे देखकर मैंने मन से ही वरण कर लिया था। यदि नियति को मेरा और उसका संयोग स्वीकार है तो अवश्य ही आज मैं इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर अपने बल का प्रदर्शन

करूंगा, लेकिन इस बल की प्रेरणा शक्ति महाराज जनक की पुत्री जानकी ही होगी।”

राम विचार कर रहे थे और महाराज जनक को यह भ्रम हुआ मानो राम धनुष को देखकर भय खा गए हैं और उनका साहस छूट गया है।

महाराज जनक तो पहले ही निराश हो चुके थे, उन्हें तो आशा ही नहीं थी कि ये नवयुवक क्षत्रिय राजकुमार धनुष को हिला भी पायेंगे। वह तो महर्षि विश्वामित्र के कारण उन्हें यहां तक ले आए।

और यह जानकर कि राम संकोच में आकर बोल नहीं रहे हैं, लेकिन धनुष उठाने का साहस नहीं कर पा रहे।

तो महाराज जनक ने कहा, “मैं तो पहले ही जानता था कि इस पृथ्वी पर कोई ऐसा वीर नहीं है, जो इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा सके।”

राम तो विचारमग्न थे। इसलिए वे महाराज जनक की यह निराशा भरी बात नहीं सुन पाए, लेकिन लक्ष्मण ने जब महाराज जनक के मुंह से पृथ्वी को वीरों से खाली सुना तो वे अपने आवेश को नहीं रोक सके और बोल पड़े, “महाराज! आप हमारे सम्माननीय हैं, इसलिए आपकी बात सुनकर मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यह तो क्या धनुष है, पुराना गला हुआ। यदि किसी वीर में शक्ति हो तो सामने आए और भुजदंडों का बल देखे। राम मेरे अग्रज हैं, मुझसे पहले उनका अधिकार बनता है और फिर मुझे महर्षि की आज्ञा भी नहीं है। इसलिए मैं मर्यादा से बंधा हुआ हूं, लेकिन मुझे यदि महर्षि आज्ञा दें तो इस धनुष को उठाकर मिट्टी के ढेले की तरह आपके सामने तोड़-मरोड़ कर रख दूंगा।”

तब तक राम अपनी मुद्रा में आ गए थे और लक्ष्मण को महर्षि ने शान्त करते हुए कहा, “शान्त हो जाओ लक्ष्मण! राम धनुष को उठाने से पूर्व महादेव शंकर का स्मरण कर रहे थे, इसलिए महाराज को भ्रम हुआ। तुम देखना, तुम्हारे पराक्रमी भाई अभी उसकी प्रत्यंचा चढ़ा देंगे।”

फिर महर्षि के चरण स्पर्श करते हुए राम ने सर्वप्रथम महाराज जनक से आशीर्वाद लिया और धनुष की परिक्रमा करते हुए ‘ओंकार’ का नाम लेकर अपने दाहिने हाथ की मजबूत मुट्ठी से धनुष बीच में से पकड़ कर एक ही झटके में उठा लिया।

राम के हाथ द्वारा धनुष के उठने से आकाश में नगाड़ बज उठे, धरती कांप गई, देवता दुंदुभि करने लगे मानो सब लोग राम के द्वारा हो रहे इस दृश्य के साक्षी हैं। वे राम के धनुष उठाने का स्वागत कर रहे हैं।

महाराज जनक ने जब देखा कि राम ने धनुष उठा लिया है तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि यह बालक सामान्य बालक नहीं, बल्कि स्वयं नारायण हैं, क्योंकि शिव के धनुष को उनके अलावा और कोई उठा सकता है तो वह केवल क्षीर सागरवासी देव श्रेष्ठ स्वयं विष्णु हैं। अवश्य ही राम उनके अवतार हैं, क्योंकि अभी तक महादेव का यह धनुष किसी ने नहीं उठाया। कहते हैं कि महर्षि परशुराम के पास जो धनुष है, वह इसी का जुड़वां भाई है।

विश्वकर्मा ने दो ही धनुष बनाए हैं, एक स्वयं महादेव के पास था और दूसरा परशुराम के पास।

महर्षि पुलस्त्य का पौत्र और विश्रवा का पुत्र रावण महादेव का पुजारी था। अतः महादेव की कृपा से वह यह धनुष उठा सकता था। वह धनुष विद्या विशारद है। इसलिए वह उसकी प्रत्यंचा भी चढ़ा देता, लेकिन शायद देवगणों को यह स्वीकार नहीं था। इसीलिए उन्होंने रावण को धनुष उठाने के लिए उद्यत जानकर वह आकाशवाणी कर दी थी।

“रे रावण! तेरी लंका जल गई है। तू यहां क्या कर रहा है? जा अपनी लंका में जा।” और तब वह महापंडित धनुष को बीच ही में छोड़कर अपनी राजधानी लौट गया था।

महाराज जनक फिर से स्वप्न से यथार्थ में आ गए। उन्होंने देखा कि बाएं हाथ की मुट्ठी से धनुष को पकड़कर राम ने उसकी प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए जैसे ही कोदंड को झुकाया, गगनभेदी गर्जना के साथ कोदंड टूटकर बीच से दो टुकड़ हो गया और राजकुमार राम उस टूटे हुए धनुष को छोड़कर यह कहते हुए अलग हो गए, “लीजिए महाराज! आपका यह धनुष प्रत्यंचा को सह ही नहीं सकता।”

महाराज की सभा में टूटे धनुष का इस प्रकार भंजन देखकर मंत्रीगण, गुरुजन और मंडप में उपस्थित प्रजाजन सभी प्रसन्न हो गए और उस सभा में जो अनेक राजागण विराजमान थे, सबके चेहरे लटक गए।

पल भर में यह समाचार सीता के पास पहुंच गया।

“राजकुमार राम ने धनुष तोड़ दिया।”

“सुना तुमने? राजकुमार राम ने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई और धनुष टूट गया।”

सीता ने जब यह सुना तो वे हर्ष विभोर हो उठीं। तभी महाराज जनक ने उन्हें सभामंडप में बुला लिया।

अपने दोनों हाथों में वरमाला लिये माता सुनयना और उर्मिला से रक्षित, सखियों से घिरी सीता रथ पर सवार होकर सभाभवन में पधारीं। उन्होंने एक दृष्टि टूटे हुए धनुष पर डाली और दूसरी दृष्टि से अपने पिता को देखा।

महाराज जनक ने कहा, “पुत्री! मैं आज अत्यन्त प्रसन्न हूं। मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। इस पृथ्वी पर ऐसे वीर हैं, ऐसे अमित तेजस्वी क्षत्रिय हैं, जो किसी क्षत्रिय की प्रतिज्ञा को पूरा करने की क्षमता रखते हैं।”

और फिर पास खड़ा हुए लक्ष्मण से महाराज जनक ने कहा, “मुझे क्षमा करना वत्स! क्षत्रिय राजाओं की क्षमता से निराश एक राजा ने नहीं, बल्कि एक पिता ने यह कहा था कि यह पृथ्वी क्षत्रियों से खाली है। मुझे क्षमा करना वत्स!”

फिर तभी महर्षि विश्वामित्र, मुनि शतानन्द सहित महाराज जनक की पुत्री सीता ने अपने

आराध्यदेव राम के गले में वह परिणय माला डाल दी।

यज्ञमण्डप में उपस्थित सभी राजागणों ने और उपस्थित मुनि एवं ब्राह्मण समूह ने इस परिणय का करतल ध्वनि से स्वागत किया।

इसके पश्चात् राम ने महाराज जनक द्वारा प्रस्तुत दूसरी जयमाला देवी सीता के गले में डाल दी।

क्या चमत्कार है यह! आज प्रातः जिसे देखने पर आंखें हट ही नहीं रही थीं, वह इस समय सामाजिक स्वीकृति के साथ उनकी चिरसंगिनी हो गई थी।

कुछ-कुछ यही दशा सीता की भी हो रही थी।

वरमाला के आयोजन के बाद श्रीराम और सीता ने सर्वप्रथम पिता जनक और माता सुनयना के चरण छूकर आशीर्वाद लिया। महर्षि विश्वामित्र का आशीष लिया। महर्षि शतानन्द को प्रणाम करके उनका आशीष लिया।

महाराज जनक ही नहीं, अपितु वहां उपस्थित समस्त समुदाय ने दशरथ नन्दन श्रीराम का पराक्रम आज अपनी आंखों से देख लिया।

महाराज जनक की प्रतिज्ञा पूरी हो गई थी। राम ने सीता को प्राप्त करने के लिए नियत पराक्रम प्रदर्शित करके ही उन्हें ग्रहण किया।

अब महाराज जनक को शीघ्र ही विवाह संस्कार सम्पन्न कराना था। अतः उन्होंने महर्षि से निवेदन करते हुए कहा—

“हे मुनिश्रेष्ठ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरे मंत्री रथ पर सवार होकर शीघ्र ही अयोध्या जाएं और महाराज दशरथ की सेवा में विवाह का निवेदन करते हुए उन्हें सम्मान सहित जनकपुरी लिवा लाएं।

“उन्हें यहां का सारा विवरण भी दे दें कि वीर्य शुल्का सीता के लिए नियत शिव-धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर राम ने सीता को पाने की पात्रता सिद्ध कर दी है। राम ने विधिवत रूप से सीता के योग्य पतिरूप में स्वयं को सिद्ध कर दिया है। इसलिए सीता एवं राम के विवाह को अपने आशीर्वाद से सफल बनाने के लिए उन्हें हम हृदय से आमंत्रित करते हैं।”

महर्षि विश्वामित्र ने महाराज जनक के प्रस्ताव को उचित मानते हुए अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और महाराज के सन्देशवाहक सचिव शीघ्र ही अयोध्या के लिए प्रस्थान कर गए।

महाराज जनक के दूत अयोध्या चले गए थे। इधर राम तो अब महाराज जनक के जामाता हो गए थे। अतः विवाह की रस्म पूरी होने तक उनके लिए महाराज जनक ने विशेष महल में उनके आवास का प्रबन्ध कर दिया। सारे जनकपुर में इस विवाह से उल्लास की लहर आ गई थी।

वरमाला डालकर अपने कक्ष में लौटी सीता से सखियों ने ठिठोली प्रारम्भ कर दी। सबसे अधिक सताया नटखट उर्मिला ने।

उर्मिला किसी भी प्रकार नहीं मान रही थी तो सीता ने उसे छेड़ते हुए कहा, “मेरी रानी! घबरा मत, दूसरे सलोने राजकुमार लक्ष्मण भी कम सुन्दर नहीं हैं। इस समय अवसर भी है, बोल पिताजी से कहकर तेरी भी भावरें डलवा दूं?”

उर्मिला ने रुकते हुए कहा, “जीजी!...आप भी बड़ी वो हैं।” उधर से आते हुए मां सुनयना ने यह बात सुन ली थी। अतः सीता की बात को गंभीरता से लेते हुए वे वहां कुछ नहीं बोलीं, किन्तु मध्याह्न काल में जब महाराज भोजनशाला से भोजन के पश्चात् विश्राम के लिए अपने कक्ष में पधारे तो सुनयना ने कहा—

“महाराज!”

“हां कहो रानी! आज तो मैं बहुत प्रसन्न हूं। मेरा बड़ा भारी बोझ हल्का हो गया।”

“बोझ और भी हल्का हो सकता है।”

“क्या मतलब?”

“यही कि राम के साथ आए उनके छोटे भाई...”

“मैं तुम्हारा तात्पर्य समझ गया, पर क्या उर्मिला तैयार है?”

“हां, मैंने उसे और सीता को परस्पर बातें करते सुन लिया था।”

“यह तो बहुत अच्छी बात है। और हां, मैं तुमसे यह कहना तो भूल ही गया कि मैंने भाई कुशध्वज को भी सपरिवार बुलावा भेज दिया है कि सुना है महाराजा दशरथ के दो पुत्र भरत-शत्रुघ्न और भी हैं तो क्यों न अपनी मांडवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह भी इसी मण्डप के नीचे हो जाए।”

सुनयना ने स्वीकृति देते हुए प्रसन्न मन होकर कहा, “हां, यह तो बहुत उत्तम प्रस्ताव है। चारों बहन अयोध्या की राजरानी बनेंगी।”

ओप्फ...कैसी स्वप्न कथा-सी लगती हैं ये घटनाएं!

मां ने समझा था कि चारों बेटियां अयोध्या की राजरानी बनेंगी। उन्हें क्या पता था कि चारों ही कालचक्र के पटे पर घूमती हुई ऐसी नियति का शिकार होंगी कि किसी को भी राजसुख यौवन में नहीं मिलेगा।

बेचारी उर्मिला!

उसे क्या मिला? और मांडवी-श्रुतिकीर्ति? वे भी तो अयोध्या में रहकर वनवासिनी होकर ही रह गईं।

और अब...मैं वहां...फिर राजरानी के स्वप्न के बिखर जाने पर उसी अवस्था में लौट आईं।

कहां लिखा है मेरे भाग्य में राजसुख!

हिचकियां लेते हुए सीता सोचने लगीं कि मेरे हिस्से में तो पति-सुख भी नहीं रहा। कम-से-कम

चौदह वर्ष के वनवास में पति साथ तो थे, पर शायद विधाता को अभी भी सन्तोष नहीं हुआ और मुझसे मेरा पति-संग भी छीन लिया।

डाल दिया मुझे यहां एकान्त वन में उपेक्षित करके। क्या सुख देख पाई हूं मैं अयोध्या राज्य का? केवल मात्र निर्वासन। उस निर्वासन की तो एक अवधि भी थी, किन्तु यह निर्वासन तो संभवतया जीवन के साथ ही समाप्त होगा।

भागीरथी की जल-लहरें किनारे से टकरा-टकराकर लौट रही थीं, किन्तु निरीह सीता के लौटने के सारे मार्ग अवरुद्ध थे। वे भी तो एक लहर की तरह होकर रह गई हैं जिसका कोई किनारा नहीं, कोई सहारा नहीं।

उनकी आंखों से आंसू तो लुढ़क ही रहे थे, हृदय की गति भी तेज हो रही थी।

मध्याह्न का सूर्य सिर पर था। वह किंकर्तव्य विमूढ़ बैठी सोच रही थी।

और अतीत के पृष्ठ पर पृष्ठ खुलते चले जा रहे थे। न चाहकर भी वे फिर जनकपुरी के उसी वातावरण में पहुंच गईं, जहां विवाह के लिए सखियाँ उनका शृंगार कर रही थीं।

कितनी प्रसन्न थी उर्मिला। मेरा कितना ध्यान रखती थी वह। मैं चलते समय किसी से मिलकर भी तो नहीं आ सकी।

महाराज दशरथ ने जनक के मंत्रियों से जब यह प्रसन्नतादायक समाचार सुना कि उनके पुत्र राम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी जा चुके हैं और वहां राम ने महादेव शंकर का धनुष भंजन करके वीर्य शुल्का सीता से परिणय की योग्यता प्राप्त कर ली है तो उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही।

शीघ्र ही उन्होंने महर्षि वसिष्ठ और वामदेव आदि मुनियों तथा गुरुजनों से परामर्श करके बारात ले चलने का प्रबंध कर दिया। आदेश के अनुसार उनकी चतुरंगिनी सेना महाराज के पीछे-पीछे चल दी।

जनकपुरी पहुंचने पर जब महाराज जनक ने बारात सहित आए महाराज दशरथ का स्वागत किया तो देवगण भी आकाश से पुष्पवर्षा करने लगे।

महाराज जनक ने संक्षेप में सभी समाचार देते हुए अपना सौभाग्य प्रदर्शित किया कि उनके द्वार पर आर्यावर्त के चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ पधारे हैं।

स्वागत-सत्कार के पश्चात् महाराज दशरथ ने कहा, “हे राजन! प्रतिग्रह दाता के अधीन होता है। अतः जैसा आप चाहेंगे, हम वैसा ही करेंगे।”

महाराज जनक ने जब यह सुना तो वे दशरथ की इस धर्मवृत्ति के प्रति भावुक हो उठे।

राजभवन में आने पर महर्षि विश्वामित्र सहित जब पिता ने अपने दोनों पुत्रों को सामने देखा तो उनकी आंखें खुशी से छलछला उठीं।

राम और लक्ष्मण ने चरण छूकर पिता को प्रणाम किया। महाराज दशरथ ने महर्षि विश्वामित्र

के सम्मुख झुककर उनका स्वागत करते हुए अर्घ्य पाद्य प्रस्तुत किया।

सौभाग्य की बात थी कि महाराज जनक का यज्ञ भी आज पूर्ण हो चुका था। उनके छोटे भाई कुशध्वज भी परिवार सहित आ गए थे।

सभी लोग अपने-अपने आसन पर विराजमान थे।

सभाभवन में महाराज दशरथ ने महर्षि वसिष्ठ से कहा, “हे कुलगुरु! आप हमारी कुल परम्परा का महाराज को परिचय दें।”

महाराज दशरथ के कथनानुसार महर्षि वसिष्ठ ने महाराज दशरथ की कुल परम्परा बताते हुए यह कहा कि इक्ष्वाकु कुल में महाराज समर से आगे उनके पुत्र असमंजस से अंशुमान से दिलीप से कुकुसत्य से रघु और इनसे आगे चलकर नहुष के ययाति के अर्ज और अज के यहां महाराज दशरथ के चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हुए हैं।

रघुकुल का परिचय पूरा होने पर महाराज जनक के कुलगुरु मुनि शतानन्द ने महाराज जनक के वंश का परिचय देते हुए कहा—

“प्राचीनकाल में महाराज निमि बड□ प्रतापी राजा हुए हैं। उनके यहां मिथि नामक पुत्र ने जन्म लिया। मिथि के पुत्र का नाम जनक था। ये ही हमारे वंश के पहले जनक हुए हैं और उन्हीं के नाम पर इस वंश के प्रत्येक राजा जनक के नाम से पुकारे जाते हैं। जनक से उदावसु से आगे चलता हुआ यह वंश राजर्षि देवरात तक आया। देवरात के वृहद्रथ के सुधृति के धृष्टकेतू के हरिअश्व के मरू हुए और इस वंश में आगे धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ हुए।

आगे कीर्तिरथ के देवमीढ□ के विबुध के महद्रिथ हुए महद्रिथ के महाबली पुत्र राजा कीर्तिरात हुए राजर्षि कीर्तिरात के महारोमा से स्वर्णरोमा से हस्वरोमा उत्पन्न हुए।”

यहां तक आकर मुनि शतानन्द मौन हो गए।

अब महाराज जनक ने कहा, “हे महाराज! राजा हस्वरोमा के दो पुत्र हुए-ज्येष्ठ मैं और कनिष्ठ मेरा छोटा भाई कुशध्वज है। मेरे पिता मुझ पर राज्य का भार छोड़□कर और कुशध्वज को मुझे सौंपकर वन में तप करने के लिए गए। मेरे राजा बनने के कुछ समय बाद सांकाश्या के राजा सुधन्वा ने मिथिला पर आक्रमण कर दिया। वह चाहता था कि मैं उसे महादेव शिव का उत्तम धनुष और अपनी पुत्री सीता दे दूं। युद्ध में वह दुष्ट लोभी राजा मेरे हाथों मारा गया। अब सांकाश्या पर मेरा आधिपत्य था। मैंने सुधन्वा का वध करके अपने छोटे भाई कुशध्वज को वहां राजा के रूप में अभिसिक्त कर दिया।”

महाराज जनक ने राजाधिराज दशरथ से निवेदन करते हुए कहा—

“हे महाराज! सीता का परिणय तो राम के साथ होना निश्चित हो ही गया है। मैं अपनी दूसरी कन्या का प्रस्ताव लक्ष्मण के लिए करता हूं। अपनी ये दोनों पुत्रियां मैं आपको प्रसन्न होकर पुत्रवधू के रूप में दे रहा हूं।”

जब महाराज जनक अपनी बात कह चुके तो अब तक दर्शक के रूप में विराजमान महर्षि विश्वामित्र ने कहा, “राजन! आप दोनों ही कुलों में यह धर्म संबंध जो स्थापित होने जा रहा है, एक-दूसरे के सर्वथा योग्य है। इस पर भी मेरा कथन यह है कि महाराज जनक के छोटे भाई सांकाश्या नरेश राजा कुशध्वज यहां उपस्थित हैं ही। उनकी दोनों पुत्रियां मांडवी और श्रुतिकीर्ति भी विवाह के योग्य हैं। महाराज दशरथ के दोनों छोटे पुत्र भरत और शत्रुघ्न भी यहां उपस्थित हैं और वय के अनुसार वे भी विवाह के योग्य हैं। अतः यदि इस शुभ अवसर पर महाराज कुशध्वज की दोनों कन्याओं का पाणिग्रहण भरत और शत्रुघ्न के साथ हो जाए तो यह अत्यन्त उत्तम रहेगा।”

महाराज जनक ने जब यह सुना तो उन्होंने उत्साह में खड्क होकर कहा—

“मुनिवर! अपने मेरे ही मन की बात कही है, लेकिन मैं संकोचवश कह नहीं पाया था। मैं आपका आभारी हूँ।”

महाराज दशरथ ने यह प्रस्ताव हृदय से स्वीकार करते हुए कहा—

“महामुनि! यह बड्ड सौभाग्य की बात है कि एक ही नक्षत्र में चारों पुत्र विवाह-बंधन में बंध जाएंगे। मेरे लिए इससे बड्ड शुभ अवसर और कौन-सा होगा।”

यहां राजमंडप में यह चर्चा चल ही रही थी कि इस प्रकार के संकेत सूत्र तेजी से अन्तःपुर में हवा की तरह प्रविष्ट हो गए और मांडवी तथा श्रुतिकीर्ति जो अभी तक बहन सीता और उर्मिला को विवाह-मंडप में ले जाने का उपक्रम कर रही थीं, देखते ही देखते वे भी सखियों से घिर गईं। उनके लिए भी विवाह के जोड्ड प्रस्तुत हो गए। उन्हें भी नथनी पहना दी गई।

उनकी चंचल वृत्ति क्षणभर में लुप्त हो गई। अब जैसे ही विवाह संस्कार का समय हुआ, चारों भाई वेदी के समीप चौकी पर आकर बैठ गए और साथ-साथ महाराज जनक की और कुशध्वज की कन्याएं भी विवाह के जोड्ड में सज्जित अग्नि के सम्मुख साक्षी के लिए उपस्थित हो गईं।

कन्यापक्ष की ओर से महर्षि शतानन्द ने पौरोहित्य कर्म किया और फिर वेदमंत्रों की ध्वनियों के बीच राम ने सीता का, लक्ष्मण ने उर्मिला का, भरत ने मांडवी का और शत्रुघ्न ने श्रुतिकीर्ति का पाणिग्रहण किया।

महाराज दशरथ ने एक-एक पुत्र के मंगल के लिए सोने से मड्ड सींगों वाली एक-एक लाख गौएं दान कीं।

जिस दिन अपने पुत्रों के विवाह के निमित्त महाराज दशरथ ने यह उत्तम गौ-दान किया उसी दिन भरत के मामा कैकय राजकुमार युधाजित भी वहां आ पहुंचे।

महाराज दशरथ ने उन्हें देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गए—

“अरे युधाजित! तुम!”

“हां महाराज! पूज्य पिताजी ने आपका समाचार पूछा है। भरत को देखे बहुत दिन हो गए थे।

उनकी इच्छा थी कि वे अपने दोहित्र को देख लें। अतः मैं इन्हें लेने ही अयोध्या आया था, परन्तु जब मुझे बहन कैकेयी से यह ज्ञात हुआ कि आप राम के विवाह के लिए जनकपुरी बारात लेकर आए हैं तो मैं यहां के लिए चल पड़ा।”

महाराज जनक ने जब जाना कि महाराज दशरथ की रानी कैकेयी के भाई युधाजित भी आए हैं तो उन्होंने कैकय राजकुमार का भव्य स्वागत किया।

अब वे भी विवाह संस्कार में सम्मिलित हो गए।

सब लोग विवाह-मंडप में बैठे हुए थे।

सबसे पहले महाराज जनक ने सीता का हाथ राम के हाथ में देते हुए कहा, “यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है। इसे स्वीकार करो और इसका हाथ अपने हाथ में लो। यह परम पतिव्रता और छाया की तरह सदा तुम्हारे पीछे चलने वाली होगी।”

यह कहते हुए महाराज जनक ने श्रीराम के हाथ में मन से पवित्र हुआ संकल्प का जल छोड़ दिया।

देवता नगाड बजाने लगे, आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी।

पेड़ के नीचे बैठी हुई सीता अपने उस दाहिने हाथ को देखने लगी।

यह वही हाथ था, जिसे श्रीराम ने पहली बार स्पर्श से सौभाग्यशाली बनाया था।

सीता के हाथ में उस प्रथम स्पर्श की फुरफुरी अब तक विद्यमान थी और वह संस्पर्श उन्हें आज भी उसी अतीत की क्रीड में ले जा रहा था।

राम का हाथ सीता के साथ विवाह-बंधन में बांधने के बाद महाराज जनक ने लक्ष्मण से कहा, “तुम्हारा कल्याण हो वत्स! मैं उर्मिला को तुम्हारी सेवा में दे रहा हूँ। इसे स्वीकार करो।”

उर्मिला का हाथ लक्ष्मण के हाथ में देने के बाद महाराज जनक ने क्रमशः मांडवी और श्रुतिकीर्ति के साथ भरत तथा शत्रुघ्न का पाणिग्रहण कराया और कहा, “तुम चारों भाई शान्त स्वभाव हो। कुकुस्त्य कुल के भूषण रूप चारों भाई पत्नियों से संयुक्त हो जाओ।”

महाराज जनक का यह आदेश सुनकर चारों राजकुमारों ने चारों राजकुमारियों के हाथ अपने हाथ में ले लिये और फिर गठबंधन में बंधे उन्होंने अग्नि, वेदी, पिता और मुनियों की परिक्रमा की।

इस प्रकार यह कार्य सम्पन्न हुआ।

सीता का अयोध्या आगमन

विवाह के पश्चात् महामुनि विश्वामित्र प्रातःकाल होने पर राम और लक्ष्मण को महाराज दशरथ के सम्मुख ले आए। महर्षि वसिष्ठ के समक्ष उन्होंने कहा, “राजन! आपके दोनों पुत्र सकुशल, सपरिवार आपकी सेवा में लौटा रहा हूँ, आपका आभारी हूँ जो आपने मेरे संकटकाल में अपने पुत्रों को मेरे साथ भेजकर मेरा यज्ञ सम्पन्न कराने में सहयोग किया।”

महाराज दशरथ ने जब यह सुना तो वे वास्तव में लज्जित हो गए। उन्होंने जिस अनागत भय से राम के प्रति अपनी ममता दिखाते हुए उन्हें विश्वामित्र के साथ भेजने में असमर्थता प्रकट की थी, वह भय आज निराधार सिद्ध हो गया था।

भावुक कंठ से श्रद्धा प्रकट करते हुए दशरथ ने विश्वामित्र के चरण छूकर उनसे क्षमायाचना की।

कुशिक नंदन विश्वामित्र ने प्रसन्न मन होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और बोले, “राजन! राम आर्यावर्त का प्रतीक पुरुष है। इसे राज्य की सीमाओं में बांधकर मत रखना।”

“मैं आपका अर्थ नहीं समझा महर्षि!”

मुस्कराते हुए विश्वामित्र ने कहा, “समय आने पर समय स्वयं इसकी व्याख्या उपस्थित कर देगा।” फिर वे सभी से विदा लेकर हिमालय पर्वत पर कौशिकी के तट पर अपने आश्रम में चले गए।

अब महाराज दशरथ भी विदेहराज जनक से अनुमति लेकर शीघ्र ही अयोध्या के लिए तैयार हो गए।

वे अपने साथ बारात में दो पुत्र लाए थे और अब राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सहित उनकी चारों पुत्रवधुओं को लेकर जा रहे थे। यह सोचते हुए महाराज दशरथ ने भावुक बने जनक से कहा—

“राजन! विश्वास कीजिए, आपके आंगन की ये चारों कलियां अयोध्या में सुगंधयुक्त पुष्प के रूप में खिलकर वातावरण को अपनी सुरभि से आप्लावित कर देंगी। आप यह जानिए कि एक पिता अपनी इन कन्याओं को दूसरे पिता के यहां भेज रहा है। मेरे लिए ये पुत्र से बढ़कर होंगी।”

फिर महाराज जनक ने अपनी कन्याओं के निमित्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार बहुत-सा दान और दहेज दिया इस तरह वह विदा की घड़ी आ गई, जो हर माता-पिता के लिए एक कष्ट की घड़ी होती है।

महाराज जनक तो फिर भी पिता थे, लेकिन मां सुनयना के आंसुओं को कोई नहीं रोक पा रहा था। जिसके घर से एक साथ चार-चार दीपक जा रहे हों, वह अपने घर के अंधकार को कैसे

समेटेगा। यह उस समय कोई मां सुनयना के हृदय की दशा को समझकर ही जान सकता था।

सुनयना ने श्रुतिकीर्ति, मांडवी और उर्मिला को रथ पर बैठा दिया और उसके बाद जब सीता की बारी आई तो बिफर पड़ी। वह और बोली, “बेटी! मैंने तुझे जन्म नहीं दिया लेकिन मैं जानती हूँ, मेरा अन्तर्तम जानता है कि मैंने तुझे अपना ही दूध पिलाया है। जितने दिन तू मेरे आंगन में खेली, तेरे मुख से फूटी हर हंसी मेरे शरीर में बहने वाले रक्त में ऊर्जा का संचार करती रही। तेरे कारण मैंने किसी भी प्रकार की कभी कोई चिंता महसूस नहीं की। तेरी दक्षता, तेरी कुशलता, तेरी कुशाग्रता और तेरी समझ, सबने ही मिलकर तेरा व्यक्तित्व बनाया है। कहने को तो तू धरती की बेटी है, लेकिन मेरे इन हाथों में पलकर बड़ी हुई तू, मेरे ही शरीर का अंग बन गई।

“आज मैं तुझे बिलखते हृदय से विदा करते हुए यही सीख दे रही हूँ कि अपनी ससुराल में भी तुझे उसी मर्यादा का पालन करना है, अपनी माताओं के अनुरूप आचरण करते हुए श्वसुर पिता की सेवा करनी है।

“और एक दायित्व भी सौंपती हूँ बेटी! ये तेरी छोटी तीनों बहनें तेरे साथ जा रही हैं। अब तू ही इनकी मां, बहन और सखी है। तू इनसे बड़ी है और गंभीर है। अब इनकी भूल को सुधारने का दायित्व भी तेरा है।”

इस तरह सीता को अपने आंचल से दूर करते हुए मन पर पत्थर रखकर मां सुनयना ने उन्हें रथ पर चढ़ा दिया। भाव विह्वल सीता ने कातर आंखों से एक बार मां को और फिर पिता जनक को देखा, फिर इसके बाद वे उन विह्वल आंखों को दुबारा देखने का साहस नहीं कर सकीं।

अपनी आंखों पर हाथ फेरते हुए सीता सोचने लगीं, “कितना लंबा समय बीत गया। उसके बाद उन्हें मां के दर्शन सुलभ नहीं हुए। वे उन्हें रोती-बिसूरती छोड़कर आई थीं।”

एक क्षण के लिए सीता के मन में कंपन हुआ। वे बाहर से भीतर तक कांप उठीं।

माता सुनयना को यदि यह पता चलेगा कि उनकी पुत्री सीता को राम ने वन में भेज दिया है तो इस वृद्धावस्था में उस मां पर क्या बीतेगी? अब उन्हें पश्चाताप होने लगा, लक्ष्मण तो बहुत दूर जा चुके थे। वे किसी प्रकार संदेश भिजवा नहीं सकती थीं कि उनकी माता को यह समाचार न मिले। फिर यह सोचकर सीता ने संतोष कर लिया—मां और पृथ्वी को बहुत कुछ सहना पड़ता है।

सीता माता के बिलखते चेहरे को देखते हुए फिर अतीत में खो गईं। वे रथ में बैठ गई थीं।

महाराज दशरथ बारात सहित अयोध्या की ओर लौट रहे थे कि तभी मार्ग में उन्हें भयंकर बोली बोलने वाले पक्षियों की चहचाहट सुनाई दी। यह चहचाहट सीता ने भी सुनी और वे भीतर-ही-भीतर कांप उठीं। यह तो किसी अशुभ के होने का अपशकुन था और हरिण उनके बाएं भाग से होकर भाग रहे थे। पता नहीं क्या होगा?

महाराज दशरथ ने जब यह देखा तो उन्होंने घबराकर महर्षि वसिष्ठ से पूछा।

महर्षि वसिष्ठ ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, “महाराज! पक्षियों की चहचहाहट जिस अशुभ फल का संकेत दे रही है, मृगों का हमारे बाएं से होकर जाना यह दर्शाता है कि यह संकट अस्थायी है।”

अभी वे बात ही कर रहे थे कि भयानक आघीं चल पड़ी, पृथ्वी कांप उठी, वृक्ष धराशायी होने लगे, सूर्य अंधकार में छिप गए। किसी को दिशा का ज्ञान न रहा और धूल से ढक जाने के कारण सेना मूर्च्छित सी हो गई।

रथ में बैठी हुई जनकसुता सीता यह देखकर अचम्भे में आ गई, यह क्या हो रहा है? यह किस अनष्टि का संकेत है?

कुछ देर बाद महाराज दशरथ ने देखा कि महर्षि परशुराम भयानक क्रोध में हाथ में नग्न फरसा लिये, मस्तक पर बल डाले, कालाग्नि के समान चले आ रहे हैं। उनके एक हाथ में महादेव शिव का धनुष है।

इससे पहले उन्होंने कभी महर्षि को इतने क्रोध में नहीं देखा था।

वसिष्ठ के संकेत पर महाराज दशरथ ने महर्षि परशुराम की सेवा में अर्घ्य प्रस्तुत किया और विनम्र निवेदन करते हुए उनका स्वागत किया।

महर्षि परशुराम ने बिना कोई भूमिका बांधे सीधे राम से कहा, “तुम्हारा पराक्रम अब्दुत है राम! तुमने शिव के धनुष का भंजन किया है। यह समाचार मुझे मिल चुका है, इसीलिए मैं उस अब्दुत और अचिन्त्य धनुष टूटने के बाद एक दूसरा धनुष लेकर आया हूं और यह जमदाग्नि कुमार परशुराम का विशाल धनुष है। तुम इसकी प्रत्यंचा खींचकर इस पर बाण चढ़ाकर अपना बल दिखाओ। इस धनुष के चढ़ाने में भी तुम्हारा वैसा ही बल है, यह देखकर ही मैं तुम्हें द्वन्द्वयुद्ध के लिए कहूंगा।”

महाराज दशरथ ने जब यह सुना तो वे घबरा उठे और बोले—

“हे ब्राह्मण! आप तो परम ज्ञानी और तपस्वी हैं। बालक को अभय दें।”

“यह सामान्य बालक नहीं है राजन!”

“महामुनि! इसका अपराध क्षमा हो।”

“यह अपराध का प्रश्न भी नहीं है। यह तो बल का प्रश्न है।”

“तुम जवाब दो राम! लो यह धनुष, क्योंकि दो ही धनुष संसार में श्रेष्ठ थे-एक जिसे तुमने तोड़ दिया और दूसरा तुम्हारे सम्मुख है।”

“वह धनुष देवताओं ने त्रिपुर राक्षस का वध करने के लिए भगवान शंकर को दिया था और यह धनुष विष्णु को दिया गया था। शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला यह वैष्णव धनुष है।”

राम ने जब यह सुना तो उन्होंने निवेदन करते हुए कहा—

“हे महर्षि! मैं क्षत्रिय हूं और आप ब्राह्मण। अतः मैं आपके सामने विनम्र होकर आपका तेज और बल स्वीकार करता हूं, लेकिन आप मुझे पराक्रमहीन न कहें, क्योंकि यदि मैंने प्रत्यंचा चढ़ा दी तो निश्चय ही इस बाण का प्रभाव बड़ा अनिष्टकारी होगा और वह निष्फल नहीं होगा।”

“आप ब्राह्मण होने के नाते मेरे पूज्य हैं।”

“बाण चढ़ाओ राम!”

“तो फिर आप लीजिए, देखिए।” राम ने यह कहते हुए बाण धनुष पर रखकर उसकी प्रत्यंचा खींच दी और बोले—

“मुनि! मैं आपको महर्षि विश्वामित्र का संबंधी जानकर धर्मसंकट में हूं। मैं इसे आपके शरीर पर नहीं छोड़ सकता। अतः विचारकर मुझे बताइए कि इस बाण से आपकी सर्वत्र शीघ्रतापूर्वक आने-जाने की शक्ति को समाप्त करूं अथवा आपके तपोबल से प्राप्त पुण्य लोकों को नष्ट करूं?”

महर्षि परशुराम ने जब प्रत्यंचा चढ़ाई हुई देखी तो वे श्रीहीन से हो गए और राम से निवेदन करते हुए बोले—

“हे राम! मैं तुम्हारे विश्वरूप को पहचान गया हूं। तुम कृपया मेरी गमन शक्ति को नष्ट न करो। मैं मन के समान वेग से अभी महेन्द्र पर्वत पर चला जाऊंगा। इस बाण से तुम मेरे पुण्य लोकों को नष्ट कर दो। उन्हें तो मैं अपने तपोबल से फिर प्राप्त कर लूंगा।”

और राम ने यह बाण छोड़कर महर्षि परशुराम के पुण्य लोकों को नष्ट कर डाला।

परशुराम प्रसन्न थे। उन्हें अपनी इस पराजय में भी विजय झलक रही थी, क्योंकि वे अपने ही समान धर्मा विष्णु के अवतार श्रीराम से परास्त हुए थे।

परशुराम शीघ्र ही महेन्द्र पर्वत पर चले गए और उनके जाने पर सारा भूचाल शान्त हो गया। सीता ने चैन की सांस ली।

ओह...कितनी घबरा गई थीं वे उस समय मानो प्राणों पर बन आई थी। अभी तो उन्हें अपने विवाह के बाद पति-मिलन का एक भी क्षण नहीं भोगा था और उन्हें लगने लगा था कि कहीं घोर अनिष्ट न हो जाए? महर्षि परशुराम के क्रोध ने उन्हें डरा दिया था।

लेकिन महर्षि के जाते ही सब शान्त हो गया।

महाराज दशरथ ने राम के इस पराक्रम को देखकर अपने आपको धन्य समझा। वे बड़ा हर्षित हुए, क्योंकि उन्हें तो अपने पुत्र का वह पुनर्जन्म लगा था।

अब बिना देरी किए महाराज दशरथ ने सेना को तेजी से कूच करने की आज्ञा दी और कुछ ही समय बाद यह समूचा दल अयोध्या के प्रांगण में पहुंच गया।

सरयू के जल में नाव पर पैर रखते हुए महाराज दशरथ ने चैन की सांस ली, चलो अब वे सुरक्षित अयोध्या आ गए।

जैसे ही वे सरयू पार करके अयोध्या की भूमि पर बढ़े, उनके लिए स्वागत का वाद्यवृंद बज उठा। राजरानियां राजभवन के बाहर उनकी अगवानी करने के लिए पहले से ही दीपमालाएं लिये खड़ी थीं।

कैसा स्वर्गिक वातावरण बन गया। महारानी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीनों आरती का थाल लिये क्रमशः राम सीता, लक्ष्मण-उर्मिला के स्वागत के लिए प्रस्तुत थीं, लेकिन जब उन्होंने भरत के साथ मांडवी को और शत्रुघ्न के साथ श्रुतिकीर्ति को देखा तो उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही।

आज अयोध्या के राजमहल में चार कुलदीप शिखाएं जलेंगी।

माताएं तीन और पुत्रवधुएं चार। यह प्रसन्नता वे कैसे समेट पाएंगी? यही सोच रही थीं। सबसे पहले द्वार पर महारानी कौशल्या ने राम और सीता का, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का पत्नियों के साथ आरती करते हुए स्वागत किया। किसी भी माता के लिए यह दिन कितनी आशाओं भरा होता है। बालक के जन्म से माता इसी दिन का इन्तजार करती है।

मां के लिए सबसे महत्वपूर्ण दिन वह होता है, जब उसका बालक उसे पहली बार अपनी तोतली आवाज में मां कहता है और दूसरा दिन, जब वह घर में बहू लाता है। आज कौशल्या के लिए सबसे बड़ा सुख का दिन है।

उन्हें तो राम को महर्षि विश्वामित्र के साथ उनके यज्ञ की रक्षा के लिए भेजा था। पुत्र के विवाह के लिए तो मां स्वप्न संजोती है, लेकिन यह तो अचानक ही मानो खुशी का स्रोत आकाश से फूटकर उनके आंगन में बह पड़ा था।

कौशल्या ने बड़ा यत्न से अपनी आंखों में आने वाले खुशी के आंसू को आंचल से पोंछते हुए पुत्र और पुत्रवधू की बलाएं लीं और फिर थाल को कैकेयी के हाथ में सौंप दिया।

कैकेयी और सुमित्रा ने चारों पुत्रों की पुत्रवधुओं के साथ आरती उतारी। मंगल गान बज उठे, दीपशिखाएं जल उठीं।

द्वार-पूजा के बाद चारों पुत्रवधुओं ने अपनी माताओं के चरण स्पर्श किए, महाराज दशरथ से आशीर्वाद लिया, महर्षि वसिष्ठ से आशीर्वाद लिया और फिर देवपूजा के लिए ये सभी लोग इष्ट कक्ष में गए।

पारम्परिक पूजा-विधान के बाद विश्राम के लिए पुत्रवधुओं को उनके महल में पहुंचा दिया गया।

हर पत्नी को नववधू के रूप में आने वाले भविष्य के प्रति एक भय और आशंका रहती है, क्योंकि आगे का जीवन नए जीवन की शुरुआत होता है।

जब राम ने अपने कक्ष में प्रवेश किया तो यहां का दृश्य उनके लिए अजनबी लगा, क्योंकि आज वे अपने उसी कक्ष में अकेले नहीं थे, उनके साथ उनकी नई सहचरी बनी सीता भी थी और कक्ष का स्वरूप एक विशेष गंध लिये हुए था। भावना का पुट लिये यह प्रेमगंध उनके नथुनों में समा रही थी। अब तक उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई थी, लेकिन आज उन पर चलने वाले कामबाण उन्हें धराशायी कर रहे थे और वे उन बाणों के सामने अपने आपको अशक्त अनुभव कर रहे थे।

इधर सीता पहली बार अपने हृदय में इस संयोग संबंध को लेकर भयभीत थीं।

लेकिन ज्योंही श्रीराम सीता के समीप आए तो वे उठकर खड़ी हो गईं और उन्होंने श्रीराम को चरण छूकर प्रणाम किया और सम्मानपूर्वक उन्हें आसन देते हुए कहा—

“स्थान ग्रहण कीजिए स्वामी!”

कुछ देर राम अपलक उन्हें देखते रहे। आज उनके सामने कोई मर्यादा का संकट नहीं था। न पीछे से लक्ष्मण ही यह कहने वाले थे कि भैया चलो, महर्षि की पूजा का समय हो गया है। इसलिए वे निश्चिंत होकर अपनी प्राणप्रिया के रूप को अपनी तृषित आंखों से पीना चाहते थे।

अपने साथ लाए एक पुष्प को सीता के जूड़ों में लगाते हुए उन्होंने कहा—

“नीलमणि के समान तुम्हारा यह सलोना रूप निश्चित ही ब्रह्मा ने बड़ी अवकाश के समय रचा है। पुष्प वाटिका में अचानक तुम्हें देखकर मुझे लगा कि कोई है, जो मुझे पुकार रहा है।”

सीता ने धीरे से पुष्प उठाते हुए कहा—

“लेकिन मैंने तो आपको आवाज नहीं दी थी।”

“आवाज दी नहीं जाती प्रिये! सुनी जाती है। जब तुम्हारे पास से तुम्हारा स्पर्श करके पवन लहरी फूलों के रास्ते चलकर मेरे पास आई तो वायु तरंगों तुम्हारी संकल्प शक्ति के बल से ध्वनि तरंगों में परिवर्तित हो गई।”

“यह आप किस विज्ञान की बात ले बैठे प्राणनाथ!”

उसी विज्ञान की, जिसने हम दोनों के मनों में एक तार झंकृत कर दिया और शायद उस संकल्प शक्ति का ही यह प्रभाव था कि वह धनुष मैंने उठा लिया और ज्योंही उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई तो वह टूट गया।

फिर राम ने सीता के कान में कहा—

“तुमने अवश्य ही अपनी पुष्पमाला में मेरा नाम अंकित कर दिया था।”

“आपका नाम तो विधाता ने अंकित कर दिया था श्रीराम! मैं तो एक कठपुतली थी और देखिए आपके साथ-साथ उर्मिला का नाम लक्ष्मण के साथ जुड़ा गया है। उर्मिला बड़ी भोली है।”

“तो क्या तुम भोली नहीं हो?”

“मैं उससे बड़की हूँ। वह बालपन में अपनी हठ मेरे साथ ही तो करती थी। मैं उसकी हठ की शक्ति भी जानती हूँ।”

“तुम तो बड़की गंभीर और चतुर मालूम पड़ती हो।”

“आपके योग्य बनने के लिए इतनी गुणवत्ता तो अपेक्षित ही है।”

“तो फिर क्या सारी रात जागकर बितानी है?” राम ने हल्की हंसी के साथ कहा।

“मैं तो आपकी दासी हूँ। आप थक गए होंगे, लाइए आपके चरण दबा दूँ।”

और जैसे ही सीता ने अपने हाथ राम के चरणों को दबाने के लिए आगे बढ़ाए, राम ने उन हाथों को अपने हाथों में लेकर पहले निहारा, फिर अपनी आंखों से छुआया और फिर तपते हुए अधर उन पर रख दिए।

सीता ने एक झटके के साथ अपने वे हाथ छुड़ा लिये मानो बहुत अधिक शक्ति वाला विद्युत-झटका उन्हें लगा हो।

“आपका स्पर्श तो बड़ा तीखा है। मेरा सारा शरीर झनझना गया है।”

“नहीं, स्पर्श तीखा नहीं, बल्कि मेरे स्पर्श ने तुम्हारे प्रेमरंध्र खोल दिए हैं और उनमें प्राणगंध आने-जाने लगी है। तुम्हें जीवन-राग सुनाई दे रहा है और दीपक की यह मद्धिम होती बाती यह संकेत दे रही है कि अब और अधिक उजालों की आवश्यकता नहीं है। हमारे मिलन की यह प्रथम रात्रि है, जो अब हम पर छा जाना चाहती है।”

“मैं आपकी भाषा नहीं समझ पा रही हूँ।”

“या प्रयास नहीं कर रही हो?”

“नहीं, ऐसा नहीं है।”

“तो फिर ऐसा है।”

और ऐसा कहते हुए राम ने सुसज्जित वस्त्राभूषणों से युक्त सीता को अपने अंक में समेट लिया। कुछ क्षण के लिए समुद्र में लहरों का भयानक ज्वार उठा। तलहटी का इतना कुछ बह गया उस ज्वार में मानो ये तरंगें सतह से उठकर आंचल में सिमटे चन्द्रमा को पाने के लिए उत्सुक हैं। अब उनके कक्ष में तरंगें थीं, स्पन्दन था, आलोड़न था और गंध थी। पूरे कक्ष में व्याप्त गंध।

अभेद हुआ यह मिलन दोनों ही प्रेमियों को एक असीम जीवन अनुराग के बंधन में जकड़ता चला गया तथा दीपक धीरे-धीरे और घना अंधेरा करता हुआ बुझ गया, क्योंकि आत्मा के प्रकाश में इस कृत्रिम दीप की कोई उपयोगिता नहीं रह गई थी।

नवल प्रातः अयोध्यानगरी के लिए सुखद भविष्य की नई रश्मियों का संचार करता प्राचीन दिशा से अपने पदार्पण का संकेत कर रहा था।

चारों कलिकाएं एक ही रात्रि में खिलकर पूर्ण पुष्प बन गई थीं और उनकी सुगंध से सारा राजमहल महक उठा था।

महाराज दशरथ की झोली में इतना अधिक सुख समेटे नहीं समेटा जा रहा था।

अब राम आदि चारों ही भाई अपनी पत्नियों सहित पिता की सेवा में लीन रहने लगे।

धीरे-धीरे यह सुख अयोध्या के महल की दीवारों में, फर्श में, छतों में व्याप गया। सब तरफ आत्मसुख का प्रकाश ही प्रकाश था।

तभी एक दिन कैकेय राजकुमार युधाजित ने अवसर पाकर महाराज दशरथ से निवेदन किया, “यदि आप आज्ञा करें तो मैं भी अब स्वदेश लौटना चाहता हूं और पिताजी की इच्छा है कि वे भरत को देख लें तो आप भरत को कुछ दिन के लिए मेरे साथ कैकेय देश भेज दें।”

महाराज ने रानी कैकेयी और भरत से परामर्श किया तथा शत्रुघ्न व भरत को सपरिवार नाना के यहां भेज दिया।

भरत के जाने पर अब राम-लक्ष्मण पिता की सेवा में प्राणपण से जुट गए।

राम यशस्वी भी थे तथा गुणवान भी और सीता जैसी सहधर्मिणी पाकर तो वे निहाल हो गए थे। उनका मन सदा सीतामय रहता था और सीता के हृदय-मंदिर में श्रीराम एक देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे।

सीता राम को बहुत अधिक प्रिय थीं। सीता के समर्पण भाव से राम और भी अधिक प्रभावित हुए। उनकी सुन्दरता और गुण दोनों ही राम के आकर्षण का कारण थे। वे राम के अभिप्राय को मन में आते ही समझ लेती थीं और उसी के अनुरूप आचरण करती थीं।

सीता और राम की यह पारस्परिक निर्भरता उनके लिए विश्वास और प्रेम का सशक्त आधार थी।

तो क्या आज विश्वास और प्रेम का आधार यह पारस्परिक निर्भरता कम हो गई है? यह प्रश्न सीता को बार-बार कचोट रहा था। वे अकेली सुनसान वन प्रदेश में इस दारुण प्रश्न से जूझ रही थीं। उनके पास इसका कोई समाधान नहीं था।

राम के राज्याभिषेक की घोषणा

जैसे सूर्य अपनी किरणों से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार राम भी सर्वगुण सम्पन्न और अपने पिता को प्रिय लगने वाले, प्रजा का हित करने वाले प्रतापी पुरुष के समान ख्याति पा रहे थे।

राम के इन गुणों को देखकर सहज ही महाराज दशरथ के मन में यह विचार आया कि वे अपने जीवनकाल में ही राम का राज्याभिषेक कर दें।

यह सोचकर उन्होंने अपने मंत्रियों से राम को युवराज बनाने के लिए परामर्श किया।

मंत्रीगण और विद्वान मनीषियों ने महाराज के प्रस्ताव का हृदय से स्वागत किया तो इस विचार को निर्णय मानते हुए महाराज ने मंत्रियों को यह आदेश दिया कि राज्याभिषेक की तैयारी शुरू की जाए।

महाराज की इस उतावली में उनके हृदय का राम के प्रति प्रेम और प्रजा का अनुराग भी कारण था।

इसके लिए दूरदराज के जनपद के सामन्त राजाओं को और प्रधान पुरुषों को आमंत्रण भिजवाए गए और न मालूम यह कैसे हुआ कि महाराज की इस बुलावा सूची में कैकेय नरेश अश्वपति और मिथिला नरेश जनक छूट गए। महाराज ने सोचा कि चलो, ये लोग इस समाचार को बाद में सुन लेंगे।

अतिथियों के आने पर महाराज दशरथ जब दरबार में बैठे तो उनके सामने एक बड़ा समूह उपस्थित था।

उन सबको संबोधित करते हुए महाराज दशरथ ने अपना मन्तव्य कहते हुए उन्हें बताया कि पुण्य नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा की भांति समस्त कार्यों के साधन में कुशल श्रेष्ठ पुरुष शिरोमणि राम को मैं कल प्रातः युवराज के पद पर नियुक्त करूंगा।

महाराज से यह सुनकर वह जनसमुदाय हर्षध्वनि से गूंज उठा। सबको इस समाचार से अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

अपने प्रस्ताव को इस प्रकार करतल ध्वनि से स्वीकार जानकर महाराज भी प्रसन्न हुए।

सेवकों और कर्मचारियों को राज्याभिषेक की समस्त तैयारी करने का आदेश दे दिया गया।

महर्षि वसिष्ठ ने कहा, “कल सूर्योदय होते ही स्वस्ति वाचन होगा, इसके लिए ब्राह्मण आमंत्रित किए जाएंगे।”

उनके लिए उचित आसन के प्रबंध का आदेश दिया गया।

महर्षि वसिष्ठ और महाराज दशरथ द्वारा सुझाई गई समस्त आवश्यक सामग्री तैयार रखने के लिए सेवक जुट गए। तब महाराज दशरथ ने सुमंत्र को राम को बुलाने के लिए भेजा।

आदेश की देर थी, कुछ ही क्षण में राजकुमार राम ज्येष्ठ रघुकुल शिरोमणि दरबार में उपस्थित हुए।

राम को पास आकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए देख महाराज दशरथ ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और स्नेह में उन्हें पास खींचकर अपने वक्ष से लगा लिया, फिर मणिजड़ित सुवर्णभूषित सुन्दर सिंहासन पर बैठने की आज्ञा दी।

और इसके पश्चात् राम से कहा—

“वत्स! तुम्हारा जन्म मेरी बड़की महारानी कौशल्या के गर्भ से हुआ है, तुम गुणों में अपनी माता और मुझसे भी बढकर हो। अपने गुणों से ही तुमने प्रजा को प्रसन्न कर दिया है। अतः इस सभा ने यह निश्चय किया है कि कल पुष्य नक्षत्र में तुम्हें युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाए।”

यह आदेश पाकर राम अपने महल में लौट आए। अभी वे मां कौशल्या को पूरी बात बता भी नहीं पाए थे कि तभी उन्हें फिर बुलावा आ गया।

जब राम पुनः महाराज दशरथ के सम्मुख पहुंचे तो उन्होंने देखा पिता का चित्त अशान्त है। राम के पूछने पर महाराज दशरथ ने बताया—

“वत्स! आजकल मुझे बड़े बुरे सपने दिखाई देते हैं। वज्रपात के साथ-साथ भयंकर शब्द करने वाली उल्काएं गिर रही हैं। ज्योतिषियों का कहना है कि मेरे जन्म नक्षत्र को सूर्य, मंगल और राहु ने आक्रान्त कर लिया है। ऐसे अशुभ लक्षणों के होने का संकेत यही है कि राजा विपत्ति में पड़ सकता है। अतः मैं चाहता हूं कि कल प्रातः ही तुम्हारा अभिषेक कर दूं ताकि कोई विघ्न न पड़े। मेरा मन है कि जब तक भरत अपने मामा के यहां है, तब तक तुम्हारा अभिषेक हो जाना चाहिए।”

यह महाराज दशरथ के मन का संकोच था अथवा भय, लेकिन राम पिता को आश्वस्त करते हुए ‘जो आज्ञा’ कहकर फिर अपने महल में लौट आए।

उन्हें राज्याभिषेक के निमित्त उपवास व्रत का पालन करना है, ताकि पिता के ग्रह नक्षत्र में राहु, सूर्य और मंगल का प्रभाव नष्ट हो सके।

राज्याभिषेक के लिए व्रत-पालन के निमित्त जब यह समाचार राम सीता को बताने के लिए अपने महल आए तो उन्होंने सीता को वहां नहीं पाया।

जब राम वहां से माता कौशल्या के पास गए तो उन्होंने देखा, वे तो पहले से ही देव मंदिर में बैठी हुई पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी की कामना कर रही हैं और सीता भी उनके पास पूजा में मग्न हैं।

कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद जब उन्होंने अपनी पूजा समाप्त की तो देखा कि उनके पीछे राम, लक्ष्मण और सुमित्रा भी खड़े हैं।

“अरे, क्या बात है? कुशल तो है, जो आज सुबह देव मन्दिर में ही, मुझे घेर लिया। मैं कहीं

भागी तो नहीं जा रही।”

सुमित्रा ने हंसकर कहा—

“दीदी! आप नहीं भागी जा रहीं, लेकिन वह घड□ी तो भागी जा रही है, जिसके लिए कोई मां अथवा कोई पत्नी व्रत नियम करती है।”

“क्या बात है सुमित्रे?”

“तुम्हारे राम का कल राजतिलक होगा।”

“अच्छा, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मां भगवती ने मेरी प्रार्थना सुन ली।”

राम ने माता कौशल्या की गले लगते हुए कहा—

“तो मां! तुम मेरे राज्याभिषेक के लिए मां भगवती से प्रार्थना कर रही थीं?”

“हां वत्स!”

“अच्छा मां! पिताजी आज कुछ अधिक चिंतित लगे। उनका विचार है, कल प्रातःकाल वे पुष्य नक्षत्र में मुझे युवराज बना दें। पर न जाने क्यों, वे दुःस्वप्नों से घिर गए हैं? बार-बार उन्हें बुरे स्वप्न आते हैं। उन्हें लगता है कि उनके यह नक्षत्र सूर्य, मंगल और राहु से घिर गए हैं, इसलिए मुझे और सीता को व्रत का पालन करना होगा। ब्रह्मचर्य धारण करते हुए कुशा पर सोना होगा।”

तभी सीता ने आगे बढ़□ते हुए कहा—

“तो फिर इसमें चिंता की क्या बात है स्वामी!”

“यह तो केवल एक रात्रि का प्रश्न है, लेकिन यदि पिता के दुःस्वप्नों अथवा विपरीत ग्रह नक्षत्रों को नियंत्रित करने के लिए अथवा उनका शमन करने के लिए हमें जीवन-भर भी व्रत रखना पड□ तो यह हमारे लिए बड□ सौभाग्य की बात होगी। मैं आपके साथ आपके व्रत को उसी निष्ठा के साथ धारण करूंगी, जिस सद्भाव से हमारे पिता चिंतामुक्त हो सकें।”

फिर ये सभी लोग देव मंदिर से चलकर अपने-अपने महलों में चले गए। सभी के चेहरे पर राम के राज्याभिषेक की प्रसन्नता झलक रही थी।

जब राम अपने महल में पहुंचे तो वे अत्यन्त प्रसन्न थे। सीता को अपने अंक में लेकर उन्होंने उनकी पलकें अपने अधरों से अंकित करते हुए उन्हें अपने अंक में ले लिया। इतना झंकृत कर देने वाला स्पर्श था यह। सीता के रूप में उन्हें लगा सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मी उनके अंक में समा गई हो और वे उसके एकमात्र स्वामी हों।

सीता के लिए व्रतपूर्व का यह मिलन अत्यन्त रोमांचकारी था। वे अपनी खुशियों को समेट नहीं पा रही थीं। यकायक उनकी आंखों से आंसू ढुलक पड□। वे आज मात्र पुत्रवधू हैं। कल प्रातःकाल सूरज की पहली किरण के साथ ज्योंही स्वस्ति वाचन का प्रारम्भ होगा, तब तक वह राजरानी बन चुकी होंगी।

राजरानी वह बनेंगी और स्वप्न माता का पूरा होगा।

सीता को याद है, जब पुष्प वाटिका से लौटकर पूजा के फूल सीता और उर्मिला ने मां सुनयना को दिए तो मां ने सीता से यही कहा—

“तुम कितनी सौभाग्यशाली हो पुत्री! तुम्हारे भीतर की सादगी और समर्पण में तुम्हारे राजरानी होने का गुण झलकता है।”

शायद यह मां का ही प्रताप था या आशीर्वाद, उसके बाद अभी चन्द्र क्षण ही बीते होंगे कि वह सुसज्जित होकर अपने कक्ष में आई ही थीं कि उन्हें एक भयानक गगनभेदी गर्जना सुनाई पड़ी। उनका हृदय थरथरा उठा और साथ-ही-साथ बाईं आंख फड़क उठी। यह निश्चय भी नहीं कर पाई थी राम के बारे में कि तभी दासी ने आकर सूचना दी, “राम ने शिव का धनुष तोड़ दिया है। महाराज जनक की प्रतिज्ञा पूरी हो गई। अब सीता का विवाह राम से होगा।”

विवाह-मंडप में जब सीता, उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति चारों पुत्रियों का राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न से विवाह हुआ तब भी मां सुनयना प्रसन्न मन से विधाता का धन्यवाद कर रही थीं—

“मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ, मेरी चारों पुत्रियां राजरानी बनेंगी।”

और इस समय राम के अंक में अकुलाती, कुलबुलाती सीता मां के स्वप्न को साकार होते देख रही थीं।

उन्हें धीरे से आगे बढ़ते पति के होंठों पर अपनी उंगली रखते हुए कहा—

“शेष बातें कल रात्रि के लिए प्राणनाथ! आज हमें अपनी निष्ठा को माता-पिता के प्रति समर्पित करना है। दायित्व निर्वहण की इस बेला में कोई अवकाश नहीं।”

तभी उन्हें यह सूचना मिली कि महर्षि वसिष्ठ राम और सीता को उपवास व्रत की दीक्षा देने के लिए आए हैं।

राम का भवन श्वेत बादलों के समान उज्ज्वल था। वहां पहुंचकर महर्षि वसिष्ठ ने तीन ड्योढ़ियों में रथ के द्वारा ही प्रवेश किया और फिर राम के द्वारा सम्मानित महर्षि उनके साथ शीघ्रतापूर्वक उनके महल में आ गए।

राम ने महर्षि को स्वयं उनका हाथ पकड़कर उन्हें रथ से नीचे उतारा।

महर्षि ने उन्हें बताया—

“प्रिय राम! तुम्हारे प्रिय पिता का आदेश है कि आज रात तुम वधू सीता के साथ उपवास करोगे।”

“हे राम! जैसे नहुष ने ययाति का अभिषेक किया, उसी प्रकार तुम्हारे पिता तुम्हारा अभिषेक करेंगे। तुम्हें कल प्रातः युवराज पद पर प्रतिष्ठित करेंगे।”

यह कहते हुए महर्षि वसिष्ठ ने राम और सीता को कुशा के आसन पर बैठाकर उपवास-व्रत

की दीक्षा दी।

महर्षि वसिष्ठ राम के द्वारा विधिवत पूज्य हुए और राम को उनका कर्तव्य समझाकर पुनः लौट आए।

राम का भवन उस समय हर्ष और उत्साह की लहरों से नहा रहा था। नर-नारियां चहल-पहल को बढा रहे थे। सड़कों पर झुंड-के-झुंड राम का अभिषेक देखने के लिए लालायित थे। अयोध्या की कोई भी अट्टालिका ऐसी नहीं बची थी, जहां राम के युवराज होने की प्रसन्नता का कोई संकेत न झलक रहा हो। अयोध्या में यह उत्सव स्वयं में एक नवीनता का संकेत देने वाला तो था ही, परस्पर विश्वास और एकता का प्रतीक भी था।

पुरोहित जी के चले जाने पर संयमी राम ने सर्वप्रथम स्नान किया, दूसरी ओर सखियों ने सीता को भी सम्पूर्ण स्नान कराया और फिर दोनों ने एक वस्त्रा होकर नारायण की उपासना आरम्भ की।

उन्होंने हविष्य पात्र को सिर झुकाकर नमस्कार किया और फिर प्रज्ज्वलित अग्नि में शेष शैया पर विराजमान भगवान नारायण की प्रसन्नता के लिए विधिपूर्वक हविष्य की आहुति दी। उसके बाद अपने मनोरथ की सिद्धि का संकल्प लेकर और पिता के गोचर पर नक्षत्रों के अनुकूलन के लिए विचार करते हुए उस यज्ञ शेष का हविष्य दोनों ने खाया। फिर मन को संयम में रखकर मौन होकर राजकुमार राम सीता के साथ भगवान विष्णु के सुन्दर मंदिर में उन्हीं का ध्यान करते हुए अलग-अलग बिछे हुए कुशों पर सो गए।

तीन पहर बीत जाने पर जब रात केवल एक पहर ही रह गई, तब वे उठ गए। सभामंडप सजाने के लिए सेवकों को आज्ञा दी और फिर प्रातःकाल की सन्ध्योपासना के लिए बैठ गए तथा एकाग्रचित होकर जाप करने लगे।

इसके पश्चात् राम ने रेशमी वस्त्र धारण किए, मस्तक झुकाकर भगवान नारायण को प्रणाम करते हुए उनका स्तवन किया और ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराया।

अयोध्यावासियों ने जब यह सुना कि राम ने सीता के साथ उपवास-व्रत आरम्भ कर दिया है तो उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

प्रातःकाल होने पर जैसे-जैसे अयोध्यावासियों को राम के अभिषेक का समाचार मिलता गया, वे सब अपने घरों, गलियों, सड़कों को सजाने में जुट गए।

व्रत पूर्ण होने पर सीता के मुखमंडल पर एक दिव्य आभा विराज गई। आज की प्रातः स्वतः ही उन्हें नई प्रातः-सी लगने लगी और जैसे ही वे व्रत-कार्य से निवृत्त होकर कुछ क्षण के लिए विश्राम की मुद्रा में अपने आसन पर बैठीं, अकस्मात् उनकी दाईं आंख फड़कने लगी। आज पहली बार उन्हें अपने महल के पीछे की ओर बेल वृक्ष पर उल्लू के बोलने की आवाज सुनाई दी और वे घबरा उठीं।

उन्होंने राम को अपने मन की शंका बताई।

“यह तुम्हारा भ्रम है जानकी! हमारे व्रत के प्रभाव से जब पिता के विपरीत ग्रह नक्षत्र अनुकूल हो सकते हैं तो हमारे ग्रह नक्षत्र व्यवधान क्यों डालेंगे?”

और इस तरह सीता की शंका बीच में ही अधूरी रह गई।

राम पूर्ण रूप से तैयार होकर राज्य परिषद के आमंत्रण की प्रतीक्षा करने लगे। वे दो बार माता कौशल्या के भी दर्शन कर चुके थे। राम और सीता दोनों ही उनका आशीर्वाद पा चुके थे, लेकिन परिषद का बुलावा अभी तक नहीं आया था।

अब राम के मन में भी भय और शंका घिरने लगी। मुहूर्त का समय टलता दिखाई देने लगा। वे कुछ निर्णय कर पाते इससे पहले ही उन्हें सुमंत्र दिखाई पड़□।

सुमंत्र को देखकर राम का टूटता साहस लौट आया और उन्होंने स्वयं ही सुमंत्र से कहा—

“क्यों? क्या बात है? तुमने इतनी देर क्यों लगा दी? महाराज स्वस्थ तो हैं, उन्होंने बुलाया है?”

“हां राजकुमार! महाराज ने आपको याद किया है।”

राम ने ज्योंही सुमंत्र के चेहरे पर दृष्टि डाली, उन्हें लगा कि यह आमंत्रण राजसभा से नहीं आया, लेकिन राम तो चतुर और गंभीर थे। अतः उन्होंने सुमंत्र से कोई प्रश्न नहीं किया और वे उसी रथ पर बैठ गए, जिस पर सुमंत्र उन्हें लेने आए थे।

चलते हुए राम ने सीता से कहा—

“प्रिये! तुम माता कौशल्या के कक्ष में चलो। मैं पिताजी के पास से लौटकर, उनका आदेश लेकर तुम्हारे पास आता हूँ।”

जो आज्ञा कहते हुए सीता माता कौशल्या के महल की ओर चल दीं और राम सुमंत्र के साथ महाराज दशरथ की सेवा में आगे बढ़□ गए।

राम के महल के बाहर अनेक नर-नारी शुभ घड□ के प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा में बधाइयां देने के लिए आतुर खड□ थे। जब राम से उन्होंने पूछा—

“अभिषेक में क्या देर है महाराज?”

“मैं यही जानने के लिए महाराज के पास जा रहा हूँ। आगामी सूचना तक आप लोग प्रतीक्षा करें।”

उधर महाराज दशरथ के महल के बाहर भी अनेक बंदीजन, वृंद गायक, सेवक और मंत्री उनकी ओर से मिलने वाले संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे। जबकि राजदरबार में आमंत्रित राजाधिराजों के साथ अनेक प्रधान पुरुषों के साथ स्वयं महर्षि वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और सुविज्ञ आदि महाराज की प्रतीक्षा में थे।

वसिष्ठ सोच रहे थे कि राजदरबार के लिए महाराज दशरथ ने इससे पहले तो कभी इतना

विलंब नहीं किया, फिर आज क्या बात हुई ?

सुमंत्र राम को महाराज की सेवा में बुला लाए।

जैसे ही राम पिता के महल में उपस्थित हुए, वहां की स्थिति को देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। यहां तो सारा स्वरूप ही बदला हुआ था।

कोई नहीं जानता था कि महाराज दशरथ के लिए यह बीती हुई रात्रि कालरात्रि के समान बीती है।

महाराज दशरथ के सामने यही चिंता सबसे बड़ी थी कि जिस अभिषेक के लिए दूर-दूर से राजागणों को आमंत्रित किया है, वे क्या सोचेंगे ?

महल में जाकर जब राम ने पिता को कैकेयी के साथ उच्च आसन के पास धरती पर विषाद मग्न देखा तो मानो स्वप्न लोक से यथार्थ में आ गए। महाराज का मुख सूखा हुआ था और वे बड़बुद दयनीय दिखाई दे रहे थे।

निकट पहुंचने पर राम ने विनीत भाव से पिता के चरणों में प्रणाम किया और उसके बाद माता कैकेयी के चरणों में मस्तक झुकाया।

दशरथ के कानों में ज्योंही राम का शब्द पड़ा, उन्होंने क्षणभर की अपनी अचेत दशा में ही आंखें खोलकर राम को निहारा और अत्यन्त दुख में व क्लेश के साथ 'राम' कहकर वे चुप हो गए।

उनके नेत्रों में आंसू छलक आए, जिसके कारण वे आंख खोलने पर भी राम को न देख सके और न ही उनसे कोई बात कर सके।

राम के लिए पिता का यह भयंकर रूप अभूतपूर्व था। मानो किसी के पैर से सांप छू गया हो, ऐसा भय और आशंका राम को हिला गई।

राजा शोक से दुर्बल और दीन हीन हो रहे थे। उनकी सांसें लम्बी चल रही थीं। चित्त में एक व्याकुलता थी। उनके शोक का कारण क्या है ? यह राम की सोच से परे था। फिर भी उन्होंने साहस करते हुए माता कैकेयी से पूछा—

“माता ! आज ऐसी क्या बात हो गई, जो पिता मुझसे प्रसन्न नहीं हैं और न बात कर रहे हैं, जबकि और दिन तो पिता कुपित होने पर भी मुझे देखकर प्रसन्न हो जाते थे, किन्तु आज तो मेरी ओर देख भी नहीं रहे हैं। इनके शोक का कारण क्या है ? मां ! ये इतने दीन हीन क्यों हैं ? किस कारण इनके मुख की कान्ति मलिन हो रही है ? क्या मुझसे अनजाने में कोई अपराध हो गया है ? आप तो जानती होंगी, क्योंकि राजदरबार से लौटने पर ये सीधे आप ही के पास आए हैं और रात्रि शयन भी इन्होंने आप ही के महल में किया है।”

कैकेयी ने मौन रहते हुए एक झलक राम को देखा। राम को लगा कि माता कुछ कहना चाहती हैं, पर कहने का साहस नहीं कर पा रही हैं।

स्वयं ही अनुमान लगाते हुए राम ने कहा—

“क्या कोई शारीरिक संताप या मानसिक चिंता तो इन्हें पीड़ित नहीं कर रही है? क्या कहीं किसी ने महाराज को असंतुष्ट करके कोई अप्रिय बात तो नहीं कह दी? भरत, शत्रुघ्न अथवा मेरी माताओं का कोई अमंगल तो नहीं हुआ?”

“और कहीं आपने तो अपने अभिमान के कारण पिता को कोई अप्रिय बात कहकर क्लेश में नहीं डाल दिया? जिससे इनका मन दुखी हो गया।”

कैकेयी सोच रही थी मानो महाराज ने करवट बदली हो और यह कातर नेत्रों से देखते हुए कैकेयी से कह रहे हैं—

“बोलती क्यों नहीं रानी! अपने मन का भेद खोल दे राम के सामने। यह तेरा वही प्रिय पुत्र है, जिसके लिए मिथ्या भी यदि तुझ कोई अप्रिय बात कहता तो तू सत्य में दुखी हो जाती और तेरे लिए राम का अहित असहनीय था। तू आज इस तरह चुप क्यों है?”

लेकिन महाराजा अचेत थे, यह कैकेयी के मन का पाप अमूर्त होकर उसके सामने संवाद कर रहा है।

राम ने कहा—

“माता! तुम्हारा मौन मेरे मन में संदेह उपजा रहा है। हे मां! सत्य बताओ, महाराज की इस शोचनीय दशा का कारण क्या है?”

अब राम ने इस प्रकार आदेश की भाषा में माता कैकेयी से प्रश्न किया तो उसके लिए चुप रहना कठिन हो गया और वह ढिठाई से बोली—

“न तो मैं और न ही तुम्हारे पिता तुम पर कुपित हैं। यह तो हमारे और इनके बीच दो वचनों का अनुबंध था, जिससे महाराज विचलित हो गए हैं।”

“तुम उनके प्रिय हो, तुमसे यह कोई अप्रिय बात कहने का साहस नहीं जुटा पा रहे, किन्तु अनुबंध के अनुसार जो वचन इन्होंने मुझे दिए थे, वे मैंने इनसे मांग लिये हैं। वचन की मर्यादा के कारण बाध्य महाराज न तो उन्हें अस्वीकार कर सकते हैं और न ही स्वीकार करके उसका परिणाम सहन कर सकते हैं, लेकिन तुम्हारे पिता ने जो वचन दिए हैं, उसके कारण जो कुछ मैंने इनसे मांगा है...

“आपने क्या मांगा है माता?”

“एक वचन के रूप में मैंने तुम्हारी जगह भरत का युवराज पद पर अभिषेक मांगा है।”

“यह तो कोई अप्रसन्नता की बात नहीं है। युवराज मैं बनूँ या भरत, राज्य तो प्रजा का है। उसके हित में ही हमें समर्पित भाव से हर निर्णय स्वीकार करना चाहिए। मुझे इसमें किसी प्रकार के कष्ट की बात नहीं दिखाई पड़ रही।”

“कष्ट तो दूसरे वचन में है पुत्र! जिसमें मैंने तुम्हारे युवराज पद के बदले तुम्हारे लिए चौदह

वर्ष का वनवास मांगा है।”

यह सुनते ही राम को खटका लगा कि अवश्य ही पिता मेरे वनवास से चिंतित हो गए हैं।

वे जानते थे कि जब महर्षि विश्वामित्र के साथ उन्हें भेजने की बात आई थी, तभी महाराज पुत्र स्नेह के कारण उन्हें भेजना नहीं चाहते थे।

वह तो बहुत अल्पकालीन अलगाव था, जबकि यह तो निर्वासन है और वह भी चौदह वर्ष के लिए। राम समझ रहे थे कि माता ने यह वरदान उनके लिए दंडरूप में निर्धारित किया है। इसीलिए पिता की यह दशा है।

रानी कैकेयी से यह सुनकर राम के हृदय में शोक नहीं हुआ, किन्तु पिता के इस दुख को देखकर वे व्यथित हो उठे और बोले—

“मां! आपका आदेश शिरोधार्य है। पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए मैं अवश्य ही वल्कल और चीर धारण करके वन चला जाऊंगा, पर मैं जानना चाहता हूं कि मेरे पिता मुझसे अप्रसन्न क्यों हैं? क्या उन्हें विश्वास नहीं कि उनका पुत्र राम उनकी आज्ञा का पालन करेगा?”

“राजा तो मेरे पिता और गुरु हैं तथा हितैषी हैं। उनकी आज्ञा होने पर ऐसा कौन-सा कार्य है जिसे मैं न करूं, किन्तु यह बात मुझे अत्यधिक पीड़ा दे रही है कि स्वयं महाराज ने मुझसे भरत के अभिषेक की बात नहीं कही।

“हे माता! यदि आप ही का आदेश हो तो भी मैं भाई भरत के लिए राज्य तो क्या, अपने प्राण और सारी सम्पत्ति प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूं तो फिर महाराज यदि आज्ञा दें और वह भी आपका प्रिय करने के लिए तो मैं प्रतिज्ञा का पालन करते हुए वह कार्य क्यों नहीं करूंगा? अवश्य करूंगा मां! मेरी ओर से महाराज को आश्वासन दो कि वे इस प्रकार निरीह होकर आंसू न बहाएं। मैं आज ही चौदह वर्ष के लिए शीघ्र दण्डकारण्य चला जाता हूं। आप महाराज की आज्ञा से शीघ्र ही दूतों को द्रुतगामी घोड़ों पर सवार करके भरत को बुला लीजिए।”

राम की यह बात सुनकर कैकेयी अब अप्रत्याशित रूप से प्रसन्न हो गई। उसे विश्वास हो गया कि राम वन चले जाएंगे। अतः उसने कहा—

“तुम ठीक कहते हो वत्स! ऐसा ही होना चाहिए। भरत को मामा के यहां से बुलाने के लिए द्रुतगामी दूत भेजे जाने चाहिए। वे अवश्य जाएंगे, किन्तु राम तुम्हारा वन जाने के लिए विलंब करना ठीक नहीं, जितना शीघ्र संभव हो, तुम यहां से वन को चल दो। महाराज लज्जित होने के कारण यदि तुमसे कुछ नहीं कह पा रहे हैं तो इसका विचार मत करो और इस दुख को अपने मन से निकाल दो, क्योंकि जब तक तुम वनगमन नहीं करोगे, तुम्हारे पिता स्नान अथवा भोजन नहीं कर पाएंगे।”

महाराज दशरथ अचेत अवश्य थे, किन्तु बीच-बीच में जब भी उनकी तंद्रा टूटती तो वे छुट-पुट बात सुन ही लेते थे।

जब उन्होंने कैकेयी को यह कहते पाया कि “मैं राम के वनगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूं और

तभी स्नान भोजन करूंगा जब ये चले जाएंगे” लंबी सांस खींचकर दशरथ ने कहा—

“धिकार है तुम पर रानी! तुमने मुझे कितना नीचे गिरा दिया!”

राम ने महाराज को उठाकर बैठा दिया और स्वयं वन जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

माता कैकेयी से राम ने कहा—

“मैं धन का उपासक होकर संसार में नहीं रहना चाहता। पिता का जो भी प्रिय कार्य मैं कर सकता हूँ, उसे प्राण देकर भी करूंगा। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। यद्यपि यह आदेश मुझे पिता ने स्वयं नहीं दिया, फिर भी मैं चौदह वर्षों का यह वनवास आपकी आज्ञा से स्वीकार कर जा रहा हूँ। आपका मुझ पर पूरा अधिकार था और है, फिर भी आपने अपने मन की यह बात मुझे न कहकर महाराज से कही और इनको कष्ट दिया, लगता है शायद आपका मुझ पर विश्वास नहीं रहा। अब मुझे आज्ञा दीजिए, ताकि मैं मां कौशल्या को समझा सकूँ, उनकी आज्ञा ले सकूँ और सीता को इसके लिए तैयार कर सकूँ कि वह मेरी अनुपस्थिति में चौदह वर्ष माता-पिता की सेवा में व्यतीत करें। आप केवल यह प्रयत्न करना कि भरत इस राज्य का पालन करते हुए पिताजी की सेवा करते रहें, क्योंकि यही सनातन धर्म है।”

राम की यह निष्ठा और भक्ति देखकर महाराज दशरथ अत्यन्त व्याकुल हो उठे। वे शोक के आवेग से कुछ बोल तो न सके, किंतु केवल फूट-फूटकर रोने लगे।

राम इसके बाद वहां ठहर नहीं सके। उनके राज्याभिषेक का निर्णय उलट चुका था। अब उन्हें दण्डकारण्य के लिए प्रस्थान करना था। अतः वे वहां से पिता को मौन प्रणाम करते हुए और माता कैकेयी के प्रति आभार प्रकट करते हुए उस भवन से बाहर चले आए।

राम का वनगमन

राम माता कौशल्या से वन की आज्ञा लेने के लिए ज्योंही रानी कैकेयी के महल से बाहर निकले, वैसे ही अन्तःपुर की राज महिलाओं का आर्तनाद शुरू हो गया। उनकी चिन्ता का विषय यही था कि सबके भले में लगे रहने वाले राम जब वन चले जाएंगे तो उनके बिना हम किसके सहारे रहेंगे ?

सबका समवेत स्वर यही था कि महाराज की बुद्धि मारी गई है, इसीलिए वे इस घमंडी रानी के बहकावे में आ गए हैं और अब लज्जा के मारे बिछौने में अपना मुंह छिपा लिया है।

इधर राम को बाहर आया देखकर बिना यह जाने कि घटनाक्रम किस तरह बदला है, वहां उपस्थित जनसमूह ने उन्हें बधाइयां देनी प्रारम्भ कर दीं। सभी लोग राम की ड्योढ़ी पर खड्ग उनकी माता कौशल्या को बधाई दे रहे थे और कभी उनके भाग्य को सराह रहे थे।

अपने सम्मुख प्रसन्नता से भरा यह जनसमूह देखकर राम असमंजस में पड़ गए। वे इन्हें किस प्रकार समझाएं कि अब यह बधाई माता कौशल्या के दरवाजे पर नहीं, बल्कि रानी कैकेयी के दरवाजे पर दी जानी चाहिए, लेकिन वे चुप रहे और सीधे माता के अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गए।

महारानी कौशल्या अब भी विष्णु-पूजा में संलग्न थीं। कुछ देर बाद जब कौशल्या ने राम को देखा तो वे प्रसन्न हुईं और उन्हें कसकर अपने अंग से लगा लिया और बोलीं—

“हे वत्स! अब जाओ, देर मत करो। अपने पिता के दर्शन करो। वे धर्मात्मा आज ही तुम्हारा राज्याभिषेक करेंगे।”

राम ने मन को कठोर करते हुए माता से कहा—

“शायद आपको बदली हुई स्थितियों का ज्ञान नहीं है। अब युवराज पद पर अभिषेक मेरा नहीं, भरत का होगा और मैं जानता हूँ कि इससे आगे जो मैं कहने जा रहा हूँ, उससे आपको, सीता को और लक्ष्मण को भी बहुत दुख होगा, लेकिन कहना तो है, क्योंकि उसे करना भी है।”

कौशल्या तो अवाक् थीं। वे तो भरत के राज्याभिषेक पर ही आश्चर्य में डूब गई थीं, यह परिवर्तन क्यों ? इसलिए भौंचक हो वे राम के चेहरे की ओर देख रही थीं।

“मां! अब मुझे चौदह वर्ष के लिए दण्डकारण्य के लिए जाना है। अब इन बहुमूल्य वस्तुओं की मेरे लिए क्या उपयोगिता ? मुझे तो कुशा की चटाई पर ही बैठना होगा। राज्य-वस्तु का त्याग करके मुनियों की भांति कंद-मूल फल खाते हुए यह समय गुजारना है।”

“महाराज युवराज का पद भरत को दे रहे हैं और मुझे चौदह वर्ष का दण्डकारण्य।”

कौशल्या ने सपत्नी के कारण अपने संदर्भ में जो कष्ट उठाए, उन्हें उन्होंने हंसकर सहन किया लेकिन अब पुत्र पर यह विपत्ति आई तो वे केले की भांति कटकर जमीन पर गिर पड़ गईं।

राम ने मां को सहारा दिया और उन्हें आसन पर बैठाया। कौशल्या अब भी मन पर इस गहन चोट की पीड़ानुभूति अनुभव कर रही थीं।

एक बेजान शरीर की तरह उन्होंने धीरे से कहा—

“यदि तुम्हारा जन्म न होता तो मुझे केवल वंध्या होने का शाप ही भोगना पड़ता, इसके अतिरिक्त तो कोई दुख न होता पर जिसे पति के प्रभुत्व काल में जो सुख प्राप्त होना चाहिए, वह पहले कभी देखने को नहीं मिला। सोचा था कि पुत्र के राज्य में ही कुछ सुख देख लूंगी, इसी आशा से अभी तक जीवित थी। मैंने कभी सपत्नी के तिरस्कार को भी महत्व नहीं दिया, लेकिन अब जबकि पति तो पहले से ही मेरे अपने नहीं थे, अब मेरे पुत्र को भी मुझसे अलग किया जा रहा है। मैं भाग्यहीनता कैसे अपने दिन काटूंगी?”

राम के लिए मां का यह दुख असहनीय था, लेकिन फिर भी उन्हें आज्ञा पालन तो करना ही था।

लक्ष्मण जो अब तक मौन थे, उनके क्रोध की सीमा टूट गई और वे चीखते हुए बोले—

“मैं अपने धनुष की सौगंध खाकर कहता हूँ भैया! आपके सामने किसी की क्षमता नहीं, जो राज्य की ओर आंख भी उठा सके। मेरा तो कहना यह है कि जब तक कोई बाहर का व्यक्ति आपके वनवास की बात को जाने, उससे पहले ही राज्य की बागडोर आपको अपने हाथ में ले लेनी चाहिए। जो विरोध करेंगे, वे अपने प्राणों से हाथ धो बैठेंगे।”

राम लक्ष्मण की क्षमता जानते थे, इसलिए उन्होंने उनको शान्त किया और दुखी मन से ही सही, मां से वन जाने की आज्ञा ली।

राम ने लक्ष्मण को समझाते हुए कहा—

“यह राज्य अभिषेक की सामग्री अब यहां से हटाओ लक्ष्मण! और मन शान्त करो। देखो हमारे पिता सदा ही सत्यवादी रहे हैं, इसलिए उनके प्रति मन में किसी प्रकार का दुर्भाव मत लाओ।

“मैं वल्कल और मृगचर्म धारण किए तथा सिर पर जटाजूट बांधे वन को चला जाऊंगा, तभी रानी कैकेयी के मन को शान्ति मिलेगी। जिस विधाता ने कैकेयी को ऐसी बुद्धि प्रदान की है और जिसकी प्रेरणा से उनका मन मुझे वन भेजने का हुआ है, उसे विकल मनोरथ करके मैं कष्ट नहीं देना चाहता।

“तुम तो जानते हो, माता कैकेयी ने कभी भी मुझमें और भरत में भेद नहीं किया। इसलिए यदि वे आज कठोर हो रही हैं तो इसे देव-इच्छा मानकर हमें स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे मुझे वन भेजने का प्रस्ताव नहीं करतीं। इसलिए मेरे लिए जब राज्य और वनवास दोनों समान हैं तो फिर तुम इस उलट-फेर के बारे में संताप क्यों करते हो?”

लक्ष्मण तो पहले ही उद्विग्न हो रहे थे, उनका क्रोध भड़क गया और क्रोध की पराकाष्ठा यह हुई कि और क्लेश में लक्ष्मण की आंखों में आंसू आ गए।

राम ने उनकी आंखों से आंसू पोंछते हुए उन्हें सामग्री हटाने के लिए आज्ञा दी।

कौशल्या तो राम के साथ वन जाना चाहती थीं, लेकिन राम ने उन्हें यह कहकर शान्त किया कि उनकी मुक्ति पति-सेवा में ही है।

अपने मन पर जैसे-तैसे नियंत्रण रखते हुए कौशल्या ने पुत्र के मस्तक पर अक्षत रखकर चंदन और रोली लगाई। मनोरथों को सिद्ध करने वाली विशल्यकरणी नामक औषधि लेकर रक्षा के उद्देश्य से मंत्र पढ़ते हुए उसे राम के हाथ में बांध दिया और मंत्र का जप किया। फिर माथा चूमकर राम को हृदय से लगाते हुए बोलीं—

“तुम सफल मनोरथ होकर अब सूखपूर्वक वन जाओ वत्स! जब तुम लौटोगे, उस समय तुम्हें राजमार्ग पर मेरी आंखें प्रतीक्षा करती मिलेंगी। जाओ, अब सीता से विदा लो।”

सीता को अभी तक इन गतिविधियों के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं था, क्योंकि न कोई समाचार मिल रहा था और न ही कोई चहल-पहल थी। दाईं आंख के फड़कने से उन्हें किसी अनिष्ट का भय अवश्य था, फिर भी वे अपनी पूजा समाप्त करके राम के आगमन की प्रतीक्षा रही थीं।

कितना कुछ नहीं देखा सीता ने? विवाह के बाद अयोध्या में वे राजरानी होने वाली थीं, लेकिन एक ही रात के अन्तराल में सारी स्थितियां पलट गईं। जिनका राज्याभिषेक होना था, उन्हें वल्कल चीर पहना दिए गए और जब स्वामी मेरे पास आए थे, सीता सोच रही थीं, वह चाहते थे कि मैं अयोध्या में रहकर माता-पिता की सेवा करूं लेकिन मैं दृढ़ प्रतिज्ञा थी इस बात के लिए कि जब माता कौशल्या का धर्म पति की सेवा है, पिता और पुत्र में से उन्हें पिता यानी अपने पति को चुनना है तो फिर सीता कैसे पीछे रहती?

और तब, जब स्वामी मेरे कक्ष में आए थे...

सजा-सजाया कक्ष, जिसमें राम उत्फुल्ल मन आया करते थे, आज उनका मुख मलिन और भाव संकुचित थे।

सीता जैसे ही उन्हें देखकर अपने आसन से उठीं, राम आकर मंत्रमुग्ध से मौन खड़ा हो गए। वे सीता को देखकर अपने मानसिक शोक भी न सह सके और उन्होंने अपनी आंखों के पानी, माथे के पसीने और शरीर के कंपन को दबाकर शांकुल होकर सीता को अपने अंक से लगा लिया।

“आपकी कैसी दशा है प्रभु?”

“हे कमलनयनी! पूज्य पिता ने मुझे वन जाने का आदेश दिया है?”

“और अभिषेक?”

“भरत के लिए।”

“लेकिन यह परिवर्तन...इसका कारण?”

“माता कैकेयी के दो वरदान।”

“इस असमय ?”

“असमय नहीं, समय कहो देवी!”

“क्यों ? राज्याभिषेक निश्चित होने पर यह कैसा व्यवधान ?”

“माता जानती हैं कि कल मेरे युवराज होने के बाद सारी व्यवस्था, राज्यतंत्र और राज्यकोष मेरे अधिकार में होगा। तब वह अपने विपन्न पति से क्या मांग सकती थीं। अतः उन्होंने आज ही महाराज के राज्यकाल में ही उन दो वचनों को भुनाना उचित समझा। मैं वन जाऊंगा, तुम्हें मेरी अनुपस्थिति में माता-पिता की सेवा करनी होगी सीते! मैं इस समय निर्जन वन में प्रस्थान से पूर्व यहां तुमसे मिलने आया हूं। यह ध्यान रखना, भरत के सामने कभी मेरी प्रशंसा मत करना, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में उनके मन के अनुकूल बर्ताव ही तुम्हें शान्ति और सुरक्षा दे पाएगा। अब तुम धैर्य धारण करके रहना।”

“हे प्राणनाथ! आप मुझे यह शिक्षा क्यों दे रहे हैं! जब मैं यहां रहूंगी, तभी तो इन सब बातों का ध्यान रखूंगी। मेरा स्वर्ग तो वहां है, जहां आप हैं। मेरी अयोध्या वहीं है, जहां आप हैं। नाथ! पत्नी केवल पति का अनुसरण करती है और पति का भाग्य ही पत्नी का भाग्य होता है। नारियों के लिए इस लोक और परलोक में एकमात्र पति ही तो आश्रय देने वाला होता है। पिता, पुत्र, माता, सखियां तथा उसका अपना यह शरीर भी सच्चा सहायक नहीं। अतः हे राम! यदि आप आज ही वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं आपकी अनुगामिनी, आपके रास्ते के कुश और कांटों को कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूंगी।

“मुझे किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, इसके बारे में मेरे माता-पिता ने मुझे पर्याप्त शिक्षा दी है। अतः इस संबंध में कोई उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। मैं जिस प्रकार अपने पिता के घर में रहती थी, उसी प्रकार वन में भी सुख ही अनुभव करूंगी।”

“तो तुम मेरे साथ चलोगी ? भला सोचो, यह क्या कह रही हो सीता!”

“वही जो आप सुन रहे हैं।”

“तो फिर मैं वहां व्रती का जीवन किस प्रकार जिऊंगा ?”

“हे आर्य! आप इस बारे में लेशमात्र चिंता न करें। नियमपूर्वक रहकर, ब्रह्मचर्य का व्रत-पालन करूंगी। मेरे लिए तीनों लोकों का ऐश्वर्य कुछ भी नहीं।”

“लेकिन वन का जीवन संकटप्रद होगा।”

“जो स्वयं दूसरों की रक्षा करने में समर्थ हैं, फिर उनके संरक्षण में मुझे क्या संकोच अथवा भय ? मैं आपके लिए भार नहीं, सहचरी बनूंगी। आपके भोजन के बाद जो बचेगा, वही मेरा भोज्य होगा।”

“मैं तुम्हारी धर्मशीलता, मितव्ययिता और गुणधर्मिता से पूरी तरह परिचित हूं और मैं जानता हूं कि तुम वन में भी उसी प्रकार सुख का अनुभव करोगी, किन्तु जरा सोचें कि मां कौशल्या और

पिता पर मेरे जाने के बाद क्या बीतेगी? क्या ये मेरे और तुम्हारे दोनों के जाने का क्लेश सहन कर पाएंगे?”

“हे स्वामी! पत्नी की गति पति के चरणों में ही है। अतः मैं आपके चरणों में अनुरक्त रहती हुई, आपके साथ ही सुख का अनुभव कर पाऊंगी। आपके बिना तो मुझे स्वर्ग भी स्वीकार नहीं, फिर अयोध्या की तो बात ही क्या?”

“और यदि इस पर भी आप मुझे ठुकराकर यहां छोड़ जाएंगे तो आपके वियोग में, निश्चय ही नहीं जी सकूंगी और जब आप लौटेंगे तो मुझे नहीं पाएंगे।”

राम सीता का यह दृढ़ निश्चय सुनकर विचलित हो गए, लेकिन फिर भी उनकी इच्छा यही थी कि वे सीता को छोड़ जाएं। माता और पिता की सेवा के लिए सीता का अयोध्या में रहना अत्यन्त आवश्यक था।

तभी राम ने देखा कि सीता की आंखों में आंसू भर आए थे, नाक से पानी बहने लगा था और वियोगजन्य भय से उनका शरीर कांपने लगा था और चेहरा श्रीहीन-सा होने लगा था।

यह देखकर राम ने सीता को समझाते हुए कहा—

“तुम तो उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो देवी! सत्-आचरण के बारे में पूरी तरह विज्ञ हो, तुम्हें तो यहां रहकर अपने धर्म का पालन करना चाहिए, जिससे मेरे मन को संतोष हो। तुम नहीं जानतीं, वन का जीवन कितना कष्टदायी होता है। शायद इसीलिए तुम वन जाने की जिद कर रही हो।”

“आप वन्य जीवन के भयावह प्रसंग को छेड़कर मेरे मन को विचलित करना चाहते हैं। आप एक बार अपने मन से तो पूछ देखिए कि क्या वह मुझे अयोध्या में छोड़ने के लिए तैयार है?”

“सीते! व्यक्ति मन और विचार के द्वन्द्व में जब फंसता है तो कई बार मन का तर्क उसे त्यागना पड़ता है। मैं आज मन का प्रश्न नहीं उठा रहा। मैं तो सामयिक स्थितियों को देखते हुए समयानुकूल आचरण की बात कर रहा हूं। क्या तुम समझती हो कि मैं वन अपनी इच्छा से जा रहा हूं? माता कौशल्या को पुत्र-वियोग का कष्ट मन से दे रहा हूं? नहीं सीते! यह मेरी धर्मगत बाध्यता है और व्यक्ति जब बाध्य होता है तो मन की इच्छाओं का त्याग करने के लिए बाध्य होता है। तुम्हें मैं इसी संदर्भ में आज अयोध्या में छोड़ रहा हूं।”

“छोड़ रहा हूं नहीं, छोड़ने के बारे में सोच रहा हूं कहिए नाथ! क्योंकि मैं यहां आपकी अनुपस्थिति में रहने के लिए किसी भी स्थिति में तैयार नहीं हूं।”

“तुम कोमल हो, नारी हो, मेरे जैसा कठिन जीवन जीने की अभ्यस्त नहीं हो, बात को समझो। मैं वन के हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा करूंगा या तुम्हारी? तुम मेरे लिए वहां एक दायित्व बन जाओगी।”

“यह आप क्या कह रहे हैं नाथ! दायित्व तो मैं उसी दिन हो गई थी, जिस दिन आपने अग्नि के समक्ष सात फेरे लिये थे। मैं आपकी पत्नी हूं, आपका धर्म आपका दायित्व हूं। चाहे अयोध्या में,

चाहे वन में। आप उससे कैसे मुक्त हो सकते हैं? आपके सभी तर्क बड़का कमजोर हैं।”

“जब मतवाला हाथी आएगा तो उसकी चिंघाड़ से कांप उठेगी। जब नदियां पार करनी होंगी तो ग्राह को देखकर डर जाओगी। जो नारी यहां घर की चारदीवारी से बाहर नहीं निकली, वह खुले आकाश में कितनी असुरक्षित होगी, इसकी कल्पना की है?”

“दिन-भर के परिश्रम से थके-मांदे मनुष्य को जमीन के ऊपर अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तों के बिछौने पर सोना पड़ता है। कितना दुख भरा है वन का जीवन।”

“लेकिन वहां यदि पत्नी का प्रेम और सान्निध्य मिले तो वह थकान कुछ तो कम हो जाएगी नाथ!”

“तुम्हारा यह जीवनराग कोरी भावुकता है सीता! वनवासी को प्रतिदिन नियमपूर्वक तीन समय स्नान करना होता है। वहां स्वयं चुनकर लाए फूलों द्वारा देवताओं की पूजा करनी होती है। जब जैसा आहार मिल जाए, खाना पड़ता है। हे देवी! रात्रि में पहाड़ी सर्प सोते हुए व्यक्ति की जीवन-लीला समाप्त भी कर देते हैं।”

“आपके सान्निध्य में मुझे इनमें से कोई बात कैसा भी कष्ट नहीं पहुंचाएगी।”

“और जब कांटेदार रास्तों पर चलना होगा? भयानक आकार के वानर और राक्षस मिलेंगे, कोमल शरीर पर खरोंचे पड़ेंगी, पैरों में छाले पड़ जायेंगे?”

“तो मैं उसे अपने आंचल से साफ कर लूंगी। आपको विश्रान्ति दूंगी।”

“अर्थात् तुम किसी भी प्रकार नहीं मानोगी?”

“यह मानने का प्रश्न नहीं है नाथ! यह तो मेरे धर्म का प्रश्न है, मेरी आस्था और मेरे विश्वास का प्रश्न है? और मैं मानती हूं कि आपका स्नेह पाकर वन के सारे दोष मेरे लिए गुणरूप हो जायेंगे और जिन हिंस्र पशुओं की बात आप कर रहे हैं, वे तो आपका रूप देखकर भाग जायेंगे। आपके समीप रहने पर तो वे भी मेरा तिरस्कार नहीं कर पायेंगे। हे नाथ! पतिव्रता स्त्री अपने पति से वियुक्त होकर कैसे जी पाएगी? और फिर मुझे तो आपके साथ चलने में कोई कष्ट नहीं है। आप क्यों संकोच कर रहे हैं? मैं जानती हूं कि वन में दुख मिलेंगे, लेकिन जीवन भी तो वन में ही मिलेगा। आपके अनुगमन से परलोक में भी मेरा कल्याण होगा। मैं आपकी धर्मपत्नी हूं, इसलिए आपके पैरों की परछाई बने रहना ही मेरी नियति है। मैं नियति से भाग नहीं सकती। मैं आपके सुख-दुख में समान रूप से हाथ बंटाने वाली हूं। और फिर सुख मिले या दुख, दोनों अवस्थाओं में मैं समान भाव ही अनुभव करती हूं। यह कहते हुए तरंग में आकर सीता ने अपनी दोनों निर्वसन बांहें राम के कंधों पर रखते हुए अपनी श्वास गंध से उन्हें अभिभूत करते हुए कहा—

“मैं आपके साथ ही चलूंगी और यदि आपने मेरे निवेदन को स्वीकार नहीं किया तो निश्चय जानिए, चाहे मुझे विष खाना पड़े, आग में कूदना पड़े, जल-समाधि लेनी पड़े, मैं मृत्यु का वरण कर लूंगी। आपके वन जाने के बाद अगली प्रातः मेरे जीवन में नहीं आएगी।”

सीता का यह दृढ□ निश्चय देख राम कांप उठे और बोले—

“तुम इतनी दृढ□ता से मेरी बात को अस्वीकार करके मेरी भावनाओं का उपहास करना चाहती हो।”

“नहीं नाथ! मैं आपके सम्मुख अपनी भावनाएं प्रस्तुत कर रही हूं, जिन्हें वन जाते समय आपने बिलकुल उपेक्षित कर दिया है। आपकी क्या सोच है? किस बात का भय है? आप मेरा परित्याग क्यों करना चाहते हैं? जब जीवन-मरण तक साथ निभाने की शपथ ली है, अग्नि को साक्षी मानकर मेरा वरण किया है तो हे आर्य! जान लीजिए, मैं भी सती हूं, किसी भी दशा में मैं आपके बिना जीवित नहीं रहूंगी। मैं किसी अन्य की भांति नहीं हूं। आपके सिवा मैं किसी पुरुष के बारे में सोच भी नहीं सकती। मन से देखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अतः यह निश्चित जान लीजिए, मैं आपके साथ ही चलूंगी। और फिर आप मुझे जिसके अनुकूल चलने की शिक्षा देकर जाना चाहते हैं और जिसके लिए आपका राज्याभिषेक रोक दिया गया है, उस भरत के आज्ञापालक बनकर आप रहिएगा, मैं नहीं रहूंगी। अतः आपका मुझे छोड़□कर वन की ओर प्रस्थान करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। फिर चाहे आप तपस्या करें, राज्य करें, वन में रहें या स्वर्ग में रहें, मैं सभी जगह आपकी चिरसंगिनी बनकर रहूंगी। आप वन में पत्तों के बिछौने पर सोएंगे और मैं यहां गद्देदार शैया पर सोऊंगी—मुझे नींद आएगी? आप वहां कन्दमूल फल खाएंगे और मैं यहां छत्तीस पकवान खा सकूंगी? एक भी कौर मेरे मुंह में जा सकेगा? आप वहां सरकंडों के कांटेदार मार्ग पर चलेंगे, यहां मैं रथ पर भला विहार कर सकती हूं? कदापि नहीं, नाथ! कदापि नहीं। हे नाथ! प्रचण्ड आंधी से उड़□ी धूल भी मुझे आपके साथ चन्दन-सी लगेगी। मैं सत्य कहती हूं कि किसी भी प्रकार आपके मार्ग में अवरोध नहीं बनूंगी—केवल आप मुझे साथ ले चलिए। मैं आपकी छाया की तरह चुपचाप चलती रहूंगी। आपको मुझसे कोई कष्ट नहीं होगा। मेरा कोई भी प्रतिकूल व्यवहार आप वहां नहीं देखेंगे। यह बालपन में अथवा भूल से यदि कोई हठकारी भी है तो वन में बिलकुल आपकी अनुगामिनी आज्ञाकारिणी ही रहूंगी। आपके साथ जहां भी रहना पड़□, मेरे लिए वही स्थान स्वर्ग होगा।”

यह कहते-कहते सीता के अश्रुजल बह निकले। राम से फिर भी कोई सांत्वना नहीं मिली तो सीता यह कहते-कहते अचेत सी हो गई।

यह देखकर राम का दृढ□-रूप पिघल-सा गया, वे बोले, “उठो सीते! प्रिय उठो! तुम्हें दुःख देकर मुझे भी स्वर्ग क्या सुख देगा? नहीं प्रिये! मैं भी तुम्हारे बिना अधूरा ही तो रहूंगा। यदि तुम इतना हठ कर रही हो तो मुझे तुम्हारा अपने साथ चलना स्वीकार है। यदि तुम्हारी नियति भी मेरी भांति ही वन की है तो मैं इसमें क्या कर सकता हूं। मैं तो यह चाहता था कि किसी प्रकार मैं तो वन का जीवन काट लूंगा, तुम्हें क्या कष्ट दूं पर यह तो नहीं चाहता कि तुम यहां कष्ट पाओ। और फिर मैं तुम्हें कष्ट पहुंचाने के लिए तो यहां नहीं छोड़□ना चाह रहा था। तुम्हारी कोमलता को देखकर चाहता था कि वह कठोर जीवन तुम कैसे झेल पाओगी, लेकिन यदि तुम इतना सब सहने के लिए तैयार हो तो प्रिये, निःशंक होकर यह कहता हूं, तुम मेरे साथ चल सकती हो। पिता के वचनों की रक्षा के लिए वन तो मुझको जाना है, क्योंकि पिता और माता के अधीन रहना

पुत्र का धर्म है। ठीक है मैं अपना धर्म निबाहूंगा, तुम अपना धर्म निबाहो। अब मैंने तुम्हारी दृढ़ता देखकर अपना विचार बदल लिया है, मेरी आज्ञा है, तुम मेरे साथ ही चलो। और अब क्यों कि हम दोनों चल रहे हैं। अतः वनवास के योग्य दान, धर्म आदि कर्म पूरे करो। देखो, ये सभी कार्य शीघ्र करो। ब्राह्मणों को अपनी सभी उत्तम वस्तुएं दान कर दो। भिक्षुओं को भोजन करा दो और जो सामग्री बचे, उसे सेवकों को दान कर दो।”

सीता ने जब राम का यह मन जाना कि वे उन्हें अपने साथ ले जा रहे हैं तो उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उन्हें भावाकुल होकर राम के चरण छू लिये और राम ने उन्हें बीच में ही रोककर अपने अंक से लगा लिया।

“लो प्रिये! अपनी तैयारी पूरी करके अपना धर्मपालन करो, हमने तुम्हारी बात मान ली।”

सीता के लिए यह मुंहमांगी मुराद के समान था। उन्होंने हठ की थी, अपने पतिव्रत धर्म का वास्ता भी दिया, किन्तु इतने पर भी यह विश्वास इतना प्रबल नहीं था और यह भी तो सच था कि एक सती स्त्री की मन की अभिलाषा अछूती रह कैसे सकती थी?

अतः यह जानकर कि स्वामी ने मेरा जाना स्वीकार कर लिया है, वे अत्यन्त प्रसन्न हुई और शीघ्रतापूर्वक सब वस्तुओं का दान करने में लग गई।

सीता को दान देते प्रसन्न होते व देख लक्ष्मण अचरज में पड़ गए। वे अभी-अभी तो भाई राम से मिलने उनके महल में आए थे। सीता साथ जा रही हैं, यह देख लक्ष्मण की आंखों में आंसू आ गए।

अब लक्ष्मण ने राम के पांव पकड़कर निवेदन करते हुए कहा, “हे कृपानिधान! यदि आपने वन में जाना निश्चित कर ही लिया है तो यह जान लीजिए कि आपसे रहित इस अयोध्या में आपका यह सेवक कभी नहीं रहेगा। अतः इस सेवक को भी साथ ले चलने की आज्ञा कीजिए।”

“तुम यह क्या कह रहे हो लक्ष्मण? भला पिताजी, माताएं क्या सोचेंगे? मेरे पीछे उनका ध्यान कौन रखेगा?”

“वही आपका अनुज भरत!”

“नहीं लक्ष्मण! ऐसा मत कहो, तुम्हें यहीं माता और पिता की सेवा में रहना है।”

“कदापि नहीं भैया!”

“तुम तो मेरे आज्ञाकारी, स्नेही, धर्मपरायण, धीर-वीर तथा सदा सन्मार्ग में स्थित रहने वाले भाई हो, तुम ऐसी अवज्ञा करोगे?”

“मैं अवज्ञा नहीं कर रहा भैया, अपने मन की व्यथा कह रहा हूं। जब सखा और अनुचर मानते हो तो फिर क्योंकर अपने से अलग कर रहे हो।”

“नहीं, अलग नहीं कर रहा, दायित्व बांट रहा हूं। भरत राज्य पाकर यदि रानी कैकेयी के अधीन हो गया तो मां कौशल्या और सुमित्रा का ध्यान कौन रखेगा?”

“शत्रुघ्न, वह मेरा छोटा भाई है। मुझे उस पर पूरा भरोसा है और फिर मैं यहां रह गया तो भरत के अधीन मैं संयत नहीं रह पाऊंगा। अतः आप मुझे अपना अनुगामी बना लीजिए भैया!

मेरे वन जाने से आपकी धर्म-हानि नहीं होगी, बल्कि मैं आपके वनवास काल में सहायक ही सिद्ध होऊंगा।”

“मैं जानता हूं लक्ष्मण! तुम सदा ही मेरे दाहिने हाथ रहे हो और मैं स्वयं भी तुम्हारे बिना रह सकता हूं—क्या तुम इसकी कल्पना कर सकते हो?”

“तो फिर आप मुझे अपने साथ ले चलने में संकोच क्यों कर रहे हो? जब आप विदेहकुमारों के साथ पर्वत शिखरों पर भ्रमण करेंगे, वहां आप जागते हों या सोते, मैं हर समय आपकी सेवा करते हुए आपके सभी आवश्यक कार्य पूर्ण करूंगा।”

“तो ठीक है भैया! जाओ, माता से आज्ञा ले लो और पूछ लो उर्मिला से, जिसे तुम्हारी अनुपस्थिति में यहां लम्बी अवधि कितनी त्रासदायी लगेगी।”

और तब सीता ने कहा, “हां लक्ष्मण! यह विचार तो तुम्हें करना ही होगा।”

“भाभी! यह अभिशाप जो माता कैकेयी ने हम सबको एक साथ परोसा है, उसका एक हिस्सा तो उर्मिला को भी सहना ही पड़गा। ब्रह्मचर्य व्रत तो हम सभी को धारण करना है, साथ रहकर आप भी इसी व्रत का पालन करेंगी तो उर्मिला क्या इतनी कमजोर है कि यह अवधि सह नहीं पाएगी। नहीं भाभी! वह मेरी पत्नी है, मेरा विश्वास है, वह मेरा लक्ष्य, मेरा संकल्प डिगने नहीं देगी। मेरी आस्था उसी के बल पर बलवती है। हां, मां सुमित्रा से विदा लेने में उतनी कठिनाई नहीं है, जितनी मां कौशल्या के सामने जाने में अनुभव कर रहा हूं।”

राम ने कहा, “अब यह तुम्हारा काम है लक्ष्मण! मेरे साथ चलने में मेरी स्वीकृति है, किन्तु माताओं से आज्ञा तुम्हें स्वयं लेनी है।”

माताएं क्या मना करतीं, दृढ़निश्चयी व्यक्ति के इरादों को कोई बदल सका है क्या? राम-सीता और लक्ष्मण तीनों ही वनगमन के लिए तैयार हो गए।

“लक्ष्मण! तुम वन के लिए तैयार हो गए। तुम धर्मव्रती हो, मैं मानती हूं, किन्तु उर्मिला से बिना मिले जाओगे? एक बार उससे मिल लो। बिना उससे विदा लिये क्या तुम चौदह वर्ष की अवधि काट सकोगे?”

“नहीं भाभी! मैं जानता हूं कि उससे बिना मिले मैं नहीं जाऊंगा, लेकिन साहस जुटा रहा हूं उससे मिलने का।”

“साहस जुटाने की आवश्यकता नहीं है वत्स!” पीछे खड़ी माता कौशल्या ने लक्ष्मण से कहा, “जाओ, उससे विदा लो और यदि वह भी जाना चाहे तो उसे भी साथ ले जाओ। यह मेरा आदेश है।”

मन में संकोच और आशंका तथा लंबी अवधि का प्रश्न सही, कुछ तो व्यवधान था मार्ग का।

कल तक जो उल्लास एक नएपन के लिए पैदा हुआ था, वह दूसरे नएपन के अवसाद में परिवर्तित हो गया।

लक्ष्मण का संकोच यही था कि वे कैसे कह पाएंगे उर्मिला से कि वे वन जा रहे हैं, भाभी और भाई की सेवा के लिए और उर्मिला को यहीं अयोध्या में रहकर उसकी प्रतीक्षा करनी होगी। कितना कठोर दंड है!

किन्तु यहां तो सभी निरपराधी दंड भोगने के लिए अभिशप्त हैं।

यह सोचते-सोचते लक्ष्मण के पैर कब उर्मिला के कक्ष में पहुंच गए, उन्हें भान ही नहीं हुआ। महल में हवा से हिलती एक परछाईं झरोखों के पास दिखाई दी। यही उर्मिला थी, जो एक स्तम्भ के सहारे खड़ी थी। यह कहना मुश्किल था कि वह स्तम्भ उर्मिला के सहारे खड़ा था या उर्मिला स्तम्भ के सहारे। यह भी नहीं कहा जा सकता था कि आंसू उर्मिला की आंख से बह रहे थे या फिर स्तम्भ से कोई स्रोत फूट पड़ा था।

पीछे से जाकर लक्ष्मण ने उर्मिला के कंधे पकड़ते हुए उसे अपनी ओर घुमाते हुए कहा—

“तुम्हें सारी कहानी मालूम है उर्मिला!”

“जानती हूं। तब से जानती हूं, जब आप पुष्प वाटिका में मिले थे और यह बिना जाने कि कोई आपको देख भी रहा है, फूल लेकर लौट गए थे अपने भैया के साथ। आज भी आप अपने भाई के साथ जा रहे हैं।”

“मैं यह कहने आया हूं कि तुम मेरे साथ चल सकती हो।”

“यह माता कौशल्या का आदेश है?”

“नहीं, मैं तुमसे मिलने आया हूं।”

“आज्ञा लेने के लिए?”

“हां उर्मिला! आज्ञा लेने आया हूं।”

“दीदी ने भेजा है?”

“क्या क्रोध की मुद्रा में हो?”

“मुझे कभी क्रोध आया है?”

“तो फिर इतनी उखड़ी-उखड़ी क्यों लग रही हो?”

“आप संयत हैं?”

“नहीं, मैं तो नहीं हूं।”

“क्या स्थितियां सामान्य हैं?”

“नहीं, तुम जानती हो कि यह सब परिवर्तन किस कुचक्र का संकेत है और हिस्सा है?”

“जानती भी हूँ, महसूस भी कर रही हूँ और देख भी रही हूँ। आप यहां आए हैं और चौदह वर्ष के लिए विदा लेने के लिए आए हैं तो ऐसा कुछ तो दे जाइए, ताकि मैं उन अविस्मरणीय यादों को अपनी अंजुलि में सहेजकर कोई स्वप्न देखती हुई जीवन की आकस्मिक घनेरी रातों को तारों से बात करते हुए गुजार सकूँ।”

उर्मिला की यह बात सुनकर लक्ष्मण का संयम डोल गया। तपते अधर आकुल अधरों से बात करने लगे। प्यासी आंखें इच्छित अभिलाषाओं को बांधने लगीं और गर्म सांसों आलोडित हवाओं का साथ देने लगीं। उन दोनों को ही यह ज्ञान नहीं रहा कि बाहर भीषण रुदन और चीख-चिल्लाहट के बीच कोई पिता अंतिम प्रयाण कर जाना चाहता है, कोई पुत्र प्रतिज्ञा का शव ढोना चाहता है और कोई पत्नी अपने वरदान को समय रहते भुना लेना चाहती है और कोई मां अब भी कर्तव्य की बलिवेदी पर धीरज और साहस की प्रतिमूर्ति, सहनशीलता और सहजता का नया उदाहरण बन रही है।

यह कुछ क्षण आकस्मिक नहीं थे, किन्तु योजनाबद्ध भी नहीं थे। यथार्थ के स्वीकार में सहज वस्तुगत दृष्टि ने यह स्थिति उपलब्ध कराई थी। कुछ पल बाद उर्मिला ने लक्ष्मण के चरण छूते हुए उस चरण धूली को अपनी मांग में भरकर कहा—

“जाइए नाथ! मैं एक जलती लौ की तरह आपकी प्रतीक्षा करूंगी और दीए का तेल सूखने नहीं दूंगी।”

क्षण-भर के लिए लक्ष्मण अवाक् रह गए।

“तुम मेरे साथ चलने की हठ नहीं करोगी?”

“अप्रासंगिक बातों को आप इस समय क्यों उठाना चाहते हैं प्रिय! मैं उन नारियों में से हूँ, जो समय की शक्ति और सीमा को पहचानती हैं। मैं जानती हूँ कि आप मुझे ले जाने के स्थिति में नहीं हैं। मैं केवल इसलिए आप पर दबाव डालूँ कि बहन सीता जा रही हैं? नहीं नाथ! नहीं। स्त्री का जीवन पाने और खोने के संतुलन के बीच झूलता है। पाना और खोना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी महत्वपूर्ण वे बातें होती हैं, जिनके लिए हम पाते और खोते हैं। आप मेरे पति हैं, मेरे प्रेमी हैं, मेरे समर्पित हैं। यह मुझसे अधिक और कौन जान सकता है तो क्या इसलिए मैं आपके कर्तव्य-मार्ग की बाधा बनूंगी? नहीं, मैं सहधर्मिणी हूँ। मैं आपके साथ-साथ अपना कर्तव्य भी जानती हूँ। मैं जानती हूँ, जीवन में भावना के साथ-साथ दायित्व का भी महत्व होता है और कई बार दायित्व भावना से बड़ा हो जाता है।

माता कौशल्या, जिन्होंने जीवनपर्यन्त तपस्या की है, वे पति से हमेशा दूर रही हैं और आज उनका पति—हमारे महाराज दशरथ, मृत्यु के मुख में जा रहे हैं और एक इकलौता पुत्र चौदह वर्ष के लिए वन जा रहा है। नाथ! आप भाई और भाभी की सेवा में जा रहे हैं। मुझे लगता है, मेरी कर्मभूमि अयोध्या है, और आपकी कर्मभूमि वन। मुझे यहीं रहकर माता कौशल्या और सुमित्रा की सेवा करनी है। इस तरह मैं आप ही के लक्ष्य को पूरा करूंगी।”

लक्ष्मण ने एक बार फिर उर्मिला के उद्दीप्त मुखमंडल पर दृष्टिपात करते हुए उस नारी को

अपने भुजदंडों में जकड़ते हुए कहा—

“तुम धन्य हो उर्मिला! मुझे तुम पर गर्व है। अब मैं संतोष के साथ वन जा सकता हूँ और दायित्व निभा सकता हूँ।”

“लक्ष्मण!”

“कौन भाभी! आओ।” कहते हुए लक्ष्मण ने उर्मिला से अलग होते भाभी सीता के कक्ष में आने के लिए वातावरण बनाया।

“आओ दीदी!” उर्मिला ने कहा।

दोनों बहनें एक-दूसरे से गले मिलकर रो पड़ीं। कहने के लिए कुछ नहीं था। केवल एक शून्य था, जिसे समयवधि ने गहरा बना दिया था।

अपने मन की गहन हलचल को रोककर उर्मिला कुछ क्षण के लिए मौन हो गई। वास्तव में उस समय जब कह सकने वाला व्यक्ति मौन साधकर बैठ चुका था, उसे बाध्यताओं की अर्गला ने जकड़ लिया था और ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राम के सामने पिता की आज्ञा के पालन के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं था, क्योंकि मर्यादा सर्वोपरि चीज थी और इसी कारण कुलगुरु वसिष्ठ भी लाचार थे। इस समस्या का समाधान महाराज दशरथ के बाद जिस व्यक्ति के पास था, वह भरत था और वही अनुपस्थित थे। बाकी सभी अकारण उपस्थित होने वाले अभिशाप से त्रस्त थे।

सीता उर्मिला की यह दशा जानती थीं, इसलिए वे कुछ देर अपनी गोद में उर्मिला को समेटे उसकी पीठ पर हाथ फेरती रहीं।

अचानक फूट पड़ी उर्मिला ने कहा—

“दीदी! विवाह के बाद पहली बार तुम्हारे इस स्पर्श ने मां की याद दिला दी और तुम भी अब लंबे समय के लिए जा रही हो। मैं कितना रोकूंगी मन को? कितना समेटूंगी अपने आपको? कितनी सीमित हो जाऊंगी मैं और मेरा कक्ष?”

और फिर कुछ सोचकर उर्मिला ने अपने जूड़ से एक फूल निकाला और बहन सीता को देते हुए कहा—

“दीदी! मैं अपनी ओर से तुम्हें यह फूल दे रही हूँ।”

और इसके बाद उर्मिला पलटकर पीछे लौट गई। उसमें न लक्ष्मण की ओर देखने का साहस था और न ही सीता की ओर।

वृक्ष के नीचे बैठी सीता आज इतने वर्षों बाद उस विरह वेदना को उसी धरातल पर अनुभव करने की स्थिति में आई थीं। आज वह भी अकेली हैं, पतिविहीना हैं। वे सोचती हैं कि उर्मिला का विरह चौदह वर्ष तक सीमित था, लेकिन उनका तो असीमित है और वे सोच रही थीं, रानी कैकेयी के चरित्र को याद करके कि उस समय इस देवी को क्या चंडी चढ़ी थी? क्या हुआ

था ?

“आह! कितनी कठोर हो गई थी माता कैकेयी उस समय!”

दान आदि सारे पुण्य कर्म करने के बाद जब राम वल्कल चीर धारण कर वन जाने की अनुमति मांगने के लिए अंतिम बार पिता महाराज दशरथ के सम्मुख गए, वे उस समय अचेत थे।

सुमंत्र ने ही महाराज को बताया कि उनके पुत्र राम और लक्ष्मण सीता सहित वन के लिए आपसे आज्ञा मांगने आए हैं।

महाराज दशरथ की वह आकुल दशा किसी से भी देखी नहीं जा रही थी।

स्वयं राम-लक्ष्मण भी सीता सहित रो पड़ रहे थे किन्तु उनकी विकलता देखकर रानी कैकेयी अब भी उसी प्रकार दृढ़ खड़ी थीं।

“महाराज! आप हम लोगों के स्वामी हैं, मैं दण्डकारण्य जा रहा हूँ। आप आशीर्वाद दें कि अवधि पूर्ण होने पर मुझे फिर आपकी सेवा का अवसर प्राप्त हो”

“मेरे साथ लक्ष्मण और सीता भी जा रहे हैं पिताजी!”

महाराज दशरथ ने राज्याभिषेक के लिए तैयार अपने पुत्र को जब वन के लिए वल्कल चीर धारण करे देखा तो उनका मन बिलख उठा।

लेकिन रानी कैकेयी ने जब सीता को चीर धारण करने के लिए दिए, यह देख महर्षि वसिष्ठ की आंखों में भी आंसू आ गए और उन्होंने कहा—

“शील का परित्याग करने वाली दुष्टे! देवी सीता वन में नहीं जाएंगी। राम के लिए प्रस्तुत सिंहासन पर अब ये बैठेंगी। तू तो कैकेय राज के यहां जन्मी जीता-जागता कलंक है। महाराज को छलकर भी तू शांत नहीं हुई। तूने कुल-मर्यादा सब कुछ भुला दिए। तू नहीं जानती कि तेरा पुत्र भरत, जिसके लिए तूने राज्य मांगा है, तुझे ही आकर धिक्कारेगा। यदि विदेहनंदिनी सीता राम के साथ वन में जाएंगी तो हम सब वन में जाएंगे। सारी प्रजा वन में जाएगी। भरत, शत्रुघ्न भी वल्कल चीर धारण कर राम की सेवा करेंगे। तब तू अकेली इस सूनी पृथ्वी पर राज्य करना। याद रख, स्त्री कुल की मर्यादा होती है और तू दुराचारिणी कुल का नाश करने पर तुली है। मैं कहता हूँ कि यदि भरत वास्तव में महाराज दशरथ के पुत्र हैं तो पिता के प्रसन्नतापूर्वक दिए बिना इस राज्य को कभी नहीं लेना चाहेंगे। तू पृथ्वी छोड़कर आसमान में उड़ जाए तो भी भरत अपने पिता के कुल के विरुद्ध आचरण नहीं करेंगे। तूने अपने पुत्र का प्रिय करने की इच्छा से वास्तव में उसका अप्रिय किया है। तू यह भूल गई कि सीता तेरी भी पुत्रवधू है और तेरी पुत्रवधू मांडवी की बड़ी बहन भी है। इसके शरीर से वल्कल हटाकर इसे उत्तम राजसी वस्त्र पहनने के लिए दे। तूने वनवास राम के लिए मांगा है, सीता के लिए नहीं। यह राजकुमारी वस्त्राभूषणों से सज्जित पूरे श्रृंगार के साथ राम के साथ वन जाएगी।”

महर्षि वसिष्ठ के कहने के बाद भी सीता ने अपने पति के समान ही वल्कल धारण किए तो चारों ओर से ‘दशरथ तुम्हें धिक्कार है’ की आवाजें आने लगीं, तो दशरथ ने भी गर्म सांस

खींचकर कैकेयी से कहा—

“रानी! महर्षि ठीक कहते हैं। यह सुकुमारी बालिका है। कुश चीर पहनकर यह वन जाने योग्य नहीं है। यह जानकी इसी रूप में वन जाएगी।”

लेकिन सीता ने माता कैकेयी के द्वारा प्रस्तावित वे वस्त्र धारण करते हुए महाराज दशरथ से कहा—

“पिताजी! आप इसके लिए संताप न करें। जिस हाल में पति रहते हैं, पत्नी के लिए भी वही अपेक्षित होता है। मेरे पति मुनि वेश में रहें तो राजसी वस्त्र मैं कैसे धारण कर सकती हूँ? मुझे तो आपके पुत्र का ही अनुसरण और अनुगमन करना है।”

अब दशरथ के पास कहने के लिए कुछ भी नहीं रह गया था।

राम और लक्ष्मण के साथ सीता ने महाराज दशरथ की परिक्रमा की, उनको प्रणाम किया, माताओं को प्रणाम किया, महर्षि वसिष्ठ से आशीर्वाद लिया और महाराज के आदेश पर ही वनवासी हुए राम, सीता और लक्ष्मण सुमंत्र के साथ उस रथ पर बैठ गए, जो उन्हें भरद्वाज मुनि के आश्रम तक छोड़कर आएगा।

वृक्ष के नीचे बैठी हुई सीता उदासमना होकर सोच रही थीं, ‘कितना दारुण दृश्य था वह। सभी नर-नारी अपना घर-द्वार छोड़कर बिलखते-चीखते उनके साथ हो लिये थे। कोई भी इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था कि वे राम के बिना अयोध्या में रहेंगे,

राम के प्रति यह जग-भावना का प्रदर्शन ही शायद रानी कैकेयी के मन में यह भय पैदा कर गया हो कि यदि राम अयोध्या में रहते हैं तो भरत निष्कण्टक राज्य नहीं कर पाएगा।

तमसा के किनारे जाकर जब राम का रथ रुका तो उन्होंने सभी नर-नारियों से निवेदन किया कि वे अयोध्या लौट जाएं, लेकिन उनमें से कोई भी लौटने को तैयार नहीं था।

सूर्यास्त हो जाने पर सुमंत्र ने घोड़ों को लाकर बांध दिया और संध्या उपासना करके राम और लक्ष्मण के साथ सीता के शयन की व्यवस्था की।

तमसा के तट पर वृक्ष के पत्तों से बनी वह शैया देखकर राम, लक्ष्मण और सीता उस पर बैठे।

मार्ग की थकान के कारण राम और सीता सो गए, लेकिन लक्ष्मण रात-भर जागते रहे।

प्रातः राम शीघ्र ही पौ फटने से पहले उठ गए। उन्हें डर था कि यदि पुरवासी उठ गए तो वे फिर हमारे साथ चलेंगे। अतः उन्होंने सुमंत्र से कहा—

“हे वीर! तुम रथ तैयार करो। हमें अभी इसी समय नदी के पार जाना है।”

आदेश की देर थी, रथ तैयार हो गया। राम, लक्ष्मण और सीता उस रथ पर बैठ गए और तीव्रगति से बहने वाली भवरो से भरी वह तमसा नदी उन्होंने रथ से पार की।

नदी के पार पहुंचने पर राम ने कहा—

“हे सारथी! हमें यहीं उतार दो और तुम अपने रथ को उत्तर दिशा की ओर ले जाओ। कुछ देर बाद उसे दूसरे मार्ग से लौटाकर फिर यहीं ले आओ। इस तरह पुरवासियों को हमारे गमन की दिशा का बोध नहीं होगा, वरना ये लोग बहुत अधिक दुखी होंगे। कहां तक जाएंगे हमारे साथ!”

और इस तरह चौदह वर्ष के लिए छूट गई यह अयोध्या। किसी को किसी का समाचार नहीं मिला। क्या गति है संसार की!

चित्रकूट में सीता

शृंगवेरपुर में निषादराज गुह से सम्मानित और आतिथ्य पाए राम, सीता और लक्ष्मण ने वहां नदी के तट पर एक रात्रि विश्राम किया।

राजा गुह के कहने पर भी राम ने घास-फूस के आसन पर सोना स्वीकार किया, क्योंकि अब वे वनवासी थे।

सीता को तृण शैया पर विराजमान देखकर गुह की आंखों में आंसू आ गए। वह देख रहा था कि एक कुलवधू जो ऐश्वर्यशाली बिछौनों पर सोने की अधिकारिणी थी, किस प्रकार भाग्यचक्र से अभिशप्त हुई आज तृण की शैया पर विराजमान है।

सीता के मुख पर इस शैया पर सोते समय जो आत्मगौरव और सुख झलक रहा था, वह अतुलनीय था। रात बीत गई, प्रातः काल हुआ, पक्षियों का कलरव होने लगा। राम ने सुमंत्र को यहां से अयोध्या लौटने के लिए कहा।

सुमंत्र की तो अभिलाषा यह थी कि वह यहीं, भ्रम के साथ ही शेष जीवन वन में काट दे और अवधि समाप्त हो जाने पर इसी रथ पर बैठाकर उन्हें अयोध्यापुरी ले जाए। इसलिए राम ने निषादराज गुह द्वारा प्रस्तावित नौका पर पहले सीता को बिठाया और फिर लक्ष्मण सहित उस पर चढ़ गए। नाव आगे बढ़ गई, राजा गुह और सुमंत्र पीछे छूट गए।

नदी पार करने के बाद जब सीता सहित राम और लक्ष्मण ने भूमि पर पैर रखे तो यह उनका अपने जनपद से बाहर पहला कदम था। यह प्रदेश अयोध्या जनपद की सीमा से बाहर है। यह देखते हुए राम ने लक्ष्मण से कहा—

“प्रिय भाई! तुम हमें यहां तक छोड़ने आए, इतना काफी है। अब तुम कल यहां से अयोध्या लौट जाओ। सीता के साथ अब मैं अकेला ही दंडक वन जाऊंगा।”

लक्ष्मण को वापस अयोध्या भेजना, जितना कहना सरल था, उतना भेजना नहीं। अतः राम को यह स्वीकार करना ही पड़ा कि अब वे तीनों ही वन चलेंगे। यह सोचते हुए सीता को साथ लिये राम आगे एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गए। लक्ष्मण ने स्वयं इस वृक्ष के नीचे सुन्दर शैया का निर्माण किया था और यह रात्रि उन्होंने यहीं व्यतीत की।

इससे आगे चलते हुए राम महर्षि भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे।

महर्षि को देखते ही तीनों ने उनके चरणों में प्रणाम किया और उन्हें बताया—

“हे भगवन्! हम दोनों महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं और यह मेरी पत्नी सती साध्वी सीता हैं, जो इस निर्जन तपोवन में भी मेरा साथ देने के लिए आई हैं।”

“मैं इस आश्रम पर चिरकाल से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैंने सुना है कि तुम्हें अकारण ही वनवास दे दिया गया है। यह एकान्त स्थान है और बड़ा पवित्र व मनोरम है। तुम यहां

सुखपूर्वक निवास कर सकते हो।”

“लेकिन महर्षि! यह हमारे जनपद के समीप होने के कारण सुखदायी नहीं रहेगा, क्योंकि यदि नागरिकों को यह ज्ञात हो गया कि मैं यहां हूं तो हमें देखने के लिए वे प्रायः आते-जाते रहेंगे। अतः स्थायी निवास के लिए तो हमें दूसरा ही स्थान देखना होगा।”

महर्षि भरद्वाज से आतिथ्य ग्रहण करने पर ये लोग समीप ही चित्रकूट पर्वत के लिए आगे बढ़ गए। यहां यमुना नदी को वृक्ष की टहनी काटकर बनाए गए बेड से ये लोग दक्षिण तट पर पहुंच गए। बेड वहीं छोड़ दिया। यहां राम ने सीता को लक्ष्मण के साथ आगे भेज दिया और वे स्वयं धनुष धारण किए हुए उनकी रक्षा करते हुए चलने लगे।

इस प्रदेश में आई सीता पूरे प्रदेश से अपरिचित थीं। अतः एक-एक वृक्ष, झाड़ और पुष्प शोभित लताओं को देखकर उनके बारे में जानती हुई चलने लगीं। रेत पर चलती हुई सीता अत्यन्त प्रसन्न थीं। राम के साथ गर्म रेत होने पर भी वे थकी नहीं थीं और न ही मुख पर किसी प्रकार का अवसाद था।

यहां एक रात्रि वृक्ष के नीचे विश्राम करने के बाद अगले दिन लक्ष्मण की सहायता से राम ने एक सुन्दर कुटिया का निर्माण कर लिया और वे कुछ समय के लिए यहां रहने लगे।

चित्रकूट पर्वत राम को तो प्रिय था ही प्रारम्भ से ही प्रिय था, लेकिन विदेहराज-कन्या सीता ने भी इस सुरम्य स्थान को अपने हाथों से लीप-पोतकर और अधिक आकर्षक बना लिया। अब वे लोग यहां पूरी तरह रम गए थे।

यद्यपि यहां रहते हुए कई बार राम के मन में यह विचार आया कि वे राज्य-भ्रष्ट हो गए हैं। उन्हें अपने हितैषियों और प्रियजनों से विलग होकर रहना पड़ रहा है, लेकिन इस वातावरण में भी जब वे अपने आपको लक्ष्मण की सेवा से संतृप्त अनुभव करते हैं और सीता का साहचर्य पाते हैं तो उनका सारा क्लेश शान्त हो जाता है।

कुटिया बनाने के बाद एक दिन इन्हीं रमणीय स्थलियों का विहार करते समय एक ऊंचे पत्थर पर बैठकर राम ने सीता से कहा—

“देवी! मैं जब सामने आकाश की ओर देखता हूं तो मुझे लगता है कि मैं राज्य-भ्रष्ट हूं और यहां निर्वासित जीवन जी रहा हूं, किन्तु जब मैं इस पर्वत श्रेणी को देखता हूं, पास में बहती हुई नदी को देखता हूं, हरे-भरे वृक्षों, खिले पुष्पों को देखता हूं तो मेरा सारा दुख दूर हो जाता है और उस समय राज्य का न मिलना और प्रियजनों का बिछोह भी मेरे मन को व्यथित नहीं करता।”

“आप सही कह रहे हैं स्वामी! यदि हम अभावों की ओर देखते हैं तो निश्चय ही मन में निराशा पैदा होती है और साहस टूटता है, लेकिन यहां रहकर भी जब उपलब्धियों पर दृष्टि डालते हैं तो वह हताशा किनारे से टकराई हुई लहर की तरह फिर लौट जाती है। ये पर्वत देख रहे हैं? जहां असंख्य पक्षी कलरव कर रहे हैं। ये बार-बार आकाश की ओर जाते हैं और फिर अपने वृक्ष की शाख पर लौट आते हैं।”

“हे राम! यह चित्रकूट पर्वत श्रेणी कितनी विभिन्नताओं को लिये हुए है। मैं तो यहां जब खाली होती हूं तो इस पर्वतमाला को देखकर अपना मन बहला लेती हूं। अयोध्या की ऊंची-ऊंची भव्य अट्टालिकाओं की छतों को देखने के बाद वहां के राज्य अनुशासन में रहने के बाद मुझे यहां का खुला आकाश बड़ा सुखकारी लगता है। सच पूछिए नाथ! यहां आकर पहली बार मैंने अनुभव किया है कि मेरा भी अपना कोई अस्तित्व है। अयोध्या में मैं मात्र एक पुत्रवधू, एक रानी बनकर रह गई थी और यहां मैं एक गृहिणी हूं, जिसके आप स्वामी हैं और देवर लक्ष्मण मेरी प्रजा। देखिए, कितनी जल्दी यह पूरा प्रदेश मेरा अपना हो गया। यह चित्रकूट प्रदेश विभिन्न धातुओं से अलंकृत कितना सुन्दर लगता है! कहीं चांदी की सी सफेद चमक, कहीं लोह की लाल आभा, पीले और हरे रंग की यह प्रकृति सुन्दरी, कहीं मणियां, कहीं पुखराज और कहीं स्फटिक के समान ये फूल, कितना नयापन दे रहे हैं, कितना अपनापन दे रहे हैं। भांति-भांति के पक्षी, मृगों के झुंड, व्याघ्र, चीते और रीछों से भरा यह प्रदेश और आपसी सद्भाव! हे स्वामी! यह सब कितना दुर्लभ था अयोध्या में। ये रमणीय पर्वत शिखर और ये प्रदेश, जिस तीव्रता से प्रेम-मिलन की भावना को बढ़ाकर आन्तरिक हर्ष प्रदान कर रहे हैं, यह कितना मनोहारी है! किन्नर-किन्नरियां एक साथ युगल रूप में विचरण करते कितने भले लगते हैं। वृक्ष चाहे फलों के हों अथवा अन्य लाभ के। ये अपनी छाया से अपनी हवा और सुन्दरता से प्रत्येक प्राणी का मन हर रहे हैं। ये विद्याधर स्त्रियां अपनी मनोरम क्रीड़ा से वातावरण को कितना संगीतमय बना रही हैं। और ये गिरते हुए झरने और इनका कलकल नाद क्या कहीं अयोध्या में उपलब्ध था? छोटे-छोटे स्रोत मिलकर एक बड़ा कुंड बनाते हुए कितने सुन्दर लग रहे हैं। हे नाथ! आपके साथ इन गुफाओं से निकली हुई पुष्प-गंध के बीच विचरण करते हुए मुझे नगर-त्याग का शोक लेशमात्र भी नहीं है। यहां मेरा मन पूरी तरह लग गया है।”

“तुम ठीक कह रही हो जानकी! तुम्हारे और भाई लक्ष्मण के साथ यह प्रदेश मुझे भी बहुत अपना-सा लगने लगा है। रात्रि में इस पर्वतराज के ऊपर उगी हुई औषधियां अग्निशिखा के समान चमकती हैं।”

“यह दृश्य भी अवश्य देखूंगी प्रिय! कितना सुन्दर होगा!”

“हे प्रिये जानकी! तुमने इस रमणीय स्थान में स्वयं को रचा-बसा लिया है, यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है और अब मुझे लगता है कि इस वनवास ने मुझे जहां पिता की आज्ञा-पालन के ऋण को पूरा करने का अवसर दिया और भरत का प्रिय किया, वहीं मुझे इस बहाने इस मनोरम स्थान के दर्शन का अवसर मिला और तुम्हारे साथ स्वतंत्र एकान्त क्षण जीने के लिए मिले। यहां मैं भी अपनी शक्ति और पराक्रम से इस प्रदेश की समस्याओं का निदान और निराकरण कर सकूंगा।”

“मेरे लिए भी तो एक गृहिणी के रूप में यह सुअवसर मिला है नाथ! कि मैं यहां एक पत्नी की भूमिका सहज ही निभा सकती हूं।”

इस तरह भ्रमण करते हुए राम और सीता पुण्य सलिला रमणीय मंदाकिनी के किनारे आ गए।

मंदाकिनी की शोभा देखते हुए सीता स्वयं एक हंसिनी की तरह इधर से उधर उड़ती, बालुका पर क्रीड़ती करती, नाना प्रकार के पुष्पों के बीच से भागती-दौड़ती नदी के किनारे आकर बैठ गई।

अपने सुन्दर पैरों को नदी के जल से स्पर्श कराती हुई वह तरंग में गुनगुनाने लगी।

प्रकृति तो स्वयं सर्वसाधन सम्पन्न होती है। इसके बीच विचरण करने वाला व्यक्ति इसकी अलौकिकता और लौकिकता के बीच संतरण करता हुआ सहज ही कवि एवं गायक बन जाता है, फिर सीता तो स्वयं भावनामयी थी।

सीता को गुनगुनाते देख एक फूल की टहनी पकड़कर राम ने उनके कान के पास छुआते हुए उसमें तरंग उत्पन्न कर दी। सीता खिलखिला उठी और उछलकर राम के अंक में आ गिरी। हवा के झोंको से शिखाएं झूल रही थीं। नदी के तट पर बिखरे हुए फूल-पत्ते इस प्रकार उड़ रहे थे मानो यह पूरा प्रदेश नृत्य करने लगा हो और इस सबके साथ नदी का बहता जल शीतलता प्रदान कर रहा था।

सीता की पतली कमर के पास अपनी श्वास गंध छोड़ते हुए राम ने उन्हें भीतर तक आलोड़ित कर दिया मानो स्वयं काम रति की तपस्या भंग करने के लिए अवसर की तलाश में वे बोले—

“सुनो सीते! इस नदी में नित्यप्रति कितने ही महात्मा प्रतिदिन स्नान करते हैं। चलो, तुम भी मेरे साथ इस नदी में स्नान कर लो। हे प्रिये! एक सखी दूसरी सखी के साथ जिस प्रकार क्रीड़ती करती है, इस मंदाकिनी में उतरकर लाल और सफेद कमलों को जल में डुबोती हुई तुम भी जल-क्रीड़ करो। यहां के वन निवासियों को पुरवासी समझ कुछ क्षण के लिए यह मान लो कि यह चित्रकूट मानो अयोध्या है और मंदाकिनी मानो सरयू है।”

“आप मानने की बात कर रहे हैं, मैं अनुभव कर रही हूँ। आपके चरण जहां स्थित हैं, मेरे लिए तो वह स्थान सदैव अयोध्या की भांति रहेगा और आपके सान्निध्य से उठने वाली हृदय तरंगें मुझे सरयू का शीतल अनुभव कराती रहेंगी। यह चित्रकूट तो मेरे लिए अयोध्या है ही, मैं तो सघन वनों को भी आपके सान्निध्य में अयोध्या ही मानती हूँ।”

“हे नाथ! मैं आपके साथ केवल भावना के कारण नहीं आई, अपितु पूरी तरह विचार करने पर आई हूँ। सिंहासन और राजमुकुट के अभाव में भी मुझे आपकी प्रजा होने का जो अवसर मिला है, वह आपकी अनुपस्थिति में अयोध्या में दुर्लभ था नाथ!”

अब सीता वहां से उठकर फिर तमसा के किनारे आ गई। वह एकाकी और निर्वासित नारी जीवन संघर्षों में राम की संगिनी रहने पर भी राम के सान्निध्य का सुख कहां पा सकी! वन प्रदेशों में रहते हुए वनवास के व्रत का पालन किया और जब अयोध्या लौटी तो यह निर्वासन। इस अन्तराल में केवल एक दायित्व निभाने का अवसर उसे अवश्य मिला है कि वह अयोध्या के उत्तराधिकारी को जन्म देगी। उसके गर्भ में राम का अंश पनप चुका है। अब वह विकास की प्रक्रिया में है।

सीता ने अपने उदर भाग पर हाथ रखते हुए कहा—

“वत्स! तू कितना भाग्यहीन है। कहां तो तुझे पिता की छत्रछाया में अयोध्या के राजमहलों में जन्म लेना चाहिए था और कहां तू एकान्त नीरव वन प्रदेश में आ गया है। तुझे भी मां के अभिशाप का सहभागी होना पड़□ है वत्स!

रे तू तो अपने पिता से भी अधिक भाग्यहीन निकला। तेरे पिता तो सत्ताइस वर्ष की आयु में वन गए थे। इससे पहले उनका सारा लालन-पालन, अध्ययन, शिक्षा-दीक्षा, विकास राज-प्रासादों में हुआ। वे तो केवल चौदह वर्ष वन में रहे, किन्तु तेरा तो जन्म भी राज-प्रासादों से दूर घने वन में होगा।”

यह सोचते हुए सीता की आंखों में आंसू आ गए। सब कुछ अचानक घटित हो गया। अभी वे राजमहल के सुख को अपने आंचल में समेट भी नहीं पाई थीं कि उन्हें निष्कासन का दंड मिल गया।

वे आज सोचती हैं...राम का वनवास उनकी अपनी इच्छा नहीं थी, माता कैकेयी के वचनों की बाध्यता ने उन्हें वन जाने के लिए बाध्य किया और वन में उनका आपहरण, उसकी एक भूल का परिणाम अवश्य था, लेकिन इसमें दोष भाग्य का भी तो है उनका दोष कहां? रावण के घर में वह रहीं अवश्य, लेकिन राम की स्मृतियों की छत्रछाया में रहीं, एक तिन्के के सहारे रहीं, फिर भी उन्हें अग्नि-परीक्षा से गुजरना पड़□।

यह अग्नि-परीक्षा व्यक्तिगत होकर रह गई। समाज ने उनका विश्वास नहीं किया और इसीलिए उनके बारे में अपवाद फैल गया और राम ने बिना उन्हें विश्वास में लिये लक्ष्मण के हाथों निष्कासित करा दिया।

सीता नदी के जल में अपनी हिलती-डुलती परछाई देखते हुए सोच रही थीं, यह उसका अपमान है, वह क्या करेगी? पति ने उसे जिस बिंदु पर आकर छोड़□ है, अब वह इस जीवन को कौन-सी दिशा देगी। सब कुछ अंधकार के गर्त में छिपा था। उसके सामने सबसे बड़□ प्रश्न था, ज्वलन्त प्रश्न—वह अपने निष्कासन का क्या कारण देगी? कैसे संतुष्ट करेगी ग्राम्य समाज को कि वह आज भी पूरी तरह पवित्र है।’

अब सीता के सामने पंचवटी कौंध गई।

चित्रकूट में भरत ने राम से मिलकर अपना पक्ष बिलकुल साफ स्पष्ट कर दिया था और कह दिया था कि राजा राम ही हैं, वहीं रहेंगे। मां के इस प्रस्ताव में उनका कोई हाथ नहीं है।

चित्रकूट में ही अपनी विशाल सेना के साथ, माताओं के लिये भरत राम को अयोध्या लौटाने आए थे, लेकिन राम तो दृढ़□ प्रतिज्ञ थे। उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। वे तो पिता के आदेश का पालन करते हुए चौदह वर्ष पूरे होने पर ही वन से लौटेंगे। इसलिए निराश, अकेले राम के आदेश को स्वीकार करते हुए भरत स्वर्णजडित खड□ां पर राम के चरण चिह्न लेकर, उन्हीं के संरक्षण में राज्य के संचालन का व्रत लेकर लौट गए थे।

हां, चित्रकूट में एक सुखकारी घटना अवश्य हुई। कुछ क्षण के लिए उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन हो गया।

यह भी कैसा संयोग था कि जब महर्षि वसिष्ठ राम को लौटने के लिए समझा रहे थे, माताएं उसी सभा में विचार के लिए उपस्थित थीं, कनखियों के संकेत से सीता ने लक्ष्मण को बुलाकर कुटिया से कुछ लाने का आदेश दिया। पूर्व योजना के अनुसार प्रिय विरह में तिल-तिल जलती दीपशिखा-सी उर्मिला कुटिया में विद्यमान थी।

ज्योंही लक्ष्मण ने कुटिया में अपने कदम भीतर रखे, सामने उर्मिला को देखकर इस अप्रत्याशित मिलन से वे अपनी भावना को काबू में न रख सके और प्यासे हिरण की तरह उसकी आंखों में आंखें डालकर बिना होंठ खोले सब कुछ कह दिया। इतने दिन का गुजारा हुआ अकेलापन सूरज की धूप से पिघली बर्फ की तरह बह गया।

कितना सुख मिला सीता को दो विरही आत्माओं को मिलाने से और इसके बाद एक लंबा अन्तराल।

अब राम ने भरत के अयोध्या लौटने के बाद वह स्थान भी निरापद न जानकर आगे की ओर प्रस्थान का मन बना लिया। अब वे और आगे दक्षिण की ओर बढ़ गए।

राम और लक्ष्मण सीता के साथ दक्षिण दिशा की ओर बढ़ते जा रहे थे और सीता बार-बार उन्हीं दृश्यों के बीच घूमती हुई अपनी दृष्टि को उसी पर्णकुटी पर केन्द्रित रखे चल रही थीं। अभी कल ही तो लौटे हैं भरत।

माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीनों माताएं भी तो साथ थीं, लेकिन जब कौशल्या ने सीता को देखा तो उनकी आंखें उसी तरह बरस पड़ें मानो सावन बदली के छा जाने पर धरती का पोर-पोर भिगो देता है। सीता अनुभव कर रही थीं मां के हृदय से निकली हूक, वह विवश हूक, जिसमें कुछ न कर पाने की विवशता आंसुओं के प्रवाह को और बढ़ा रही थी।

“क्या आश्चर्य है।” मार्ग में सीता ने राम से कहा—

“तीनों माताएं आईं, कैकेयी ने तो आपसे लौटने के लिए कहा भी, किन्तु माता कौशल्या ने एक बार भी आपसे लौटने के लिए नहीं कहा। आप इसका कारण बता सकते हैं नाथ?”

“हां सीते! कारण स्पष्ट है—यदि मां कौशल्या मुझसे कहतीं कि पुत्र! अयोध्या लौट चलो, तुम्हारा राज्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है तो मां का दर्जा पिता से अधिक मान्य है, मेरे सम्मुख लौटने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था सीते! लेकिन मैं जानता था कि मां नहीं कहेंगी, क्योंकि वे इस रघुकुल की साम्राज्ञी हैं, वे कुल की मर्यादा जानती हैं। वे आत्ममोह में कर्तव्य और मर्यादा का होम नहीं करेंगी और उन्होंने ऐसा नहीं किया, यही उनकी शक्ति है। इस तरह एक बार फिर उन्होंने रघुकुल की रानी होने का दायित्व निभाया। सीते! तुम क्या सोचती हो कि मुझे लौट जाना चाहिए था?”

“भरद्वाज मुनि के आश्रम से पहले तो मैं यही सोचती थी, लेकिन जब से भरद्वाज मुनि से भेंट

हुई और उन्होंने इस वनवास को आपकी कर्मभूमि बताया है तो मेरा मस्तक और ऊंचा हो गया है। मुझे आपकी धर्मपत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इससे मेरा गौरव बढ़ा है। यह अयोध्या केवल मात्र राज्य नहीं, बल्कि राष्ट्र राज्य है नाथ! और आप इसके सर्वमान्य सम्राट हैं। यह आपकी कर्मभूमि है, यहीं वास करते हुए आप शरभंग मुनि के आश्रम में पहुंचकर, उनसे दिशा प्राप्त करके, यहां अनेक स्थानों पर वास करते हुए आतंकवादी गतिविधियों को समूल नष्ट करके शान्ति का वातावरण स्थापित करेंगे। वनवासी जनों को, जो कि हमारी ही प्रजा है, उनकी रक्षा करने का दायित्व भी हमारा है। इसलिए यहां भी आप एक क्रियाशील राजा की ही भूमिका निभाएंगे।”

इस तरह वार्तालाप करते, समस्याओं पर विचार विश्लेषण करते ये वनवासी शरभंग मुनि के आश्रम की ओर बढ़ गए।

सीता-हरण

स्मृतियों की धारा में बहती हुई सीता कब मौन हो गई, उन्हें ज्ञात ही नहीं रहा। आकाश में सूर्य अपनी रश्मियों को समेट रहे थे और सीता मार्ग खोजती एकाकी पथ पर आश्रय की तलाश में चलती जा रही थी, विचारों की नाव पर सवार। सामने धवल केशधारी सौम्य सुशील, प्रकृति से उदार एक महामना तपस्वी आते दिखाई पड़ें।

“तुम कौन हो पुत्री? एक साध्वी के रूप में तुम यहां!”

ज्योंही सीता ने मुनि को प्रणाम की मुद्रा में सिर नीचे झुकाया, मुनि ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—

“तुम अवश्य ही महाराज दशरथ की पुत्रवधू और राजा जनक की पुत्री महाराज राम की पटरानी सीता हो। तुम्हारा स्वागत है पुत्री! जब तुम यहां आ रही थीं, तभी अपनी धर्म-समाधि के द्वारा मुझे यह ज्ञात हो गया कि तुम्हारा परित्याग किया गया है और उसके कारण मैंने मन से ही जान लिये।

हे पुत्री! इस संसार में जो कुछ हो रहा है, वह मुझे विदित है। अब तुम निश्चित हो जाओ। इस समय तुम मेरे पास हो।” और सीता महर्षि वाल्मीकि के साथ-साथ उनके आश्रम में चली आईं।

उन्हें आश्रम में अनेक तापसी स्त्रियां मिलीं। वे सब तपस्या में संलग्न थीं। सीता को पाकर उन्होंने उन्हें अपनी बेटी के समान मानते हुए उनका स्वागत किया।

महर्षि ने सीता को अर्घ्य देते हुए कहा—

“इसे ग्रहण करो पुत्री और निर्भय हो जाओ। अब तुम अपने ही घर में आ गई हो, यह मानकर किसी प्रकार का क्लेश अनुभव मत करो। तुम्हें तो अयोध्या के कुलवंशी को जन्म देना है पुत्री!”

सीता के लिए भी अब उस आश्रम में एक कुटिया नियत कर दी गई।

महर्षि ने आश्रमवासियों को यह स्पष्ट कर दिया कि महाराज राम की धर्मपत्नी सीता निष्पाप होने पर भी परित्याग की गई, आज यहां हमारे सम्मुख हैं। अब मुझे ही इनका लालन-पालन करना है। अतः आप सब इन पर अपनी स्नेह दृष्टि बनाए रखें।

मुनि ने सीता को निष्पाप कहकर उनका जो सम्मान किया, इससे वे कुछ क्षण के लिए अपने आन्तरिक दुख से उबर गईं लेकिन उनके अतीत अकर्म की उन्हें यह सजा मिली है।

सीता फिर स्मृतियों में खो गईं।

शरभंग मुनि के आश्रम से चलकर राम और लक्ष्मण के साथ ये लोग सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुंचे। कितनी दूर का मार्ग तय करके अगाध जल नदियों को पार करके वे लोग यहां पहुंचे थे और यहां जब सुतीक्ष्ण मुनि के दर्शन हुए तो लगा मानो मुनि प्रतीक्षा कर रहे थे। यहीं उन्हें ज्ञात

हुआ कि यह कर्मभूमि उनकी प्रतीक्षा कर रही है। यहां क्रूरकर्मा राक्षसों के द्वारा अनेक आश्रम उजड़ गए हैं। अनेक राक्षस तपस्वियों को मार डालते हैं। इस प्रदेश में ब्राह्मणों की सेवा करने का यह अवसर उत्तम था, क्योंकि ये तपस्वी राक्षसों से आक्रान्त होकर सदैव अपने लिए आश्रय खोजते थे। यदि यहां से राक्षसों का आतंक हट जाए तो अवश्य ही यह प्रदेश शान्ति प्रदेश हो जाएगा।

यह सोचते हुए राम ने अपना कर्तव्य निश्चित किया और लगभग दस वर्ष तक भिन्न-भिन्न स्थलों पर रहकर आक्रान्ताओं का विनाश करते हुए राम अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुंचे और वहीं से आगे चलकर उन्होंने पंचवटी में अपनी कुटिया निर्मित की।

पांच वटवृक्षों के बीच यह रमणीय प्रदेश जहां विपर्णशाला बनाकर राम, लक्ष्मण और सीता के साथ स्थायी आवास के लिए ठहरे, बड़ ही मनोरम प्रदेश था। समीप ही गोदावरी नदी थी, लेकिन दैव का प्रकोप कि एक दिन दुष्ट राक्षसी शूर्पणखा पता नहीं कहां से घूमती-घूमती उनकी कुटिया में आ गई।

अभी दोपहर भी नहीं हुई थी, राम सीता के साथ बैठे थे कि उस कुरूपवती ने आते ही स्नेहित वातावरण में खलबली मचा दी। वह राम से विवाह करना चाहती थी। वह कामपीडिता इतने ओछे स्तर पर उतर आई कि या तो उससे विवाह करो अथवा वह इनको खा जाएगी।

राम ने ही यह कहा कि मेरी पत्नी है, मेरे साथ रहती है, मैं तो इसके रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकता, शूर्पणखा चाहे तो लक्ष्मण से यह प्रस्ताव कर सकती है।

थोड़ी ही देर में उसे यह ज्ञात हो गया कि ये दोनों ही भाई उसका उपहास कर रहे हैं।

पता नहीं उसमें कैसा भाव जागा, वह अंगारों के समान नेत्रों वाली राक्षसी सीता पर झपटी। राम ने जब यह देखा कि सीता के प्राण संकट में पड़ सकते हैं, उन्होंने तुरंत लक्ष्मण को आदेश दिया—

“परिहास मत करो लक्ष्मण! सीता के प्राण संकट में हैं। तुम इसको अंगहीन कर दो।”

और लक्ष्मण ने म्यान से तलवार निकालकर उस अभद्र राक्षसी शूर्पणखा के नाक और कान काट लिये।

यहीं से एक भयानक अहंकारी राक्षस रावण से शत्रुता का उदय हो गया।

शूर्पणखा की नाक, कान कटने पर खर-दूषण ने अपनी बहन का बदला लेने के लिए राम पर आक्रमण किया, लेकिन उसके चौदह हजार राक्षसों की सेना का राम ने बड़ी सरलता से सफाया कर दिया।

दुखियारी शूर्पणखा ने अपनी पीड़ा को रावण के सामने रखा।

अहंकारी रावण बात का मर्म समझे बिना क्रोधित हो उठा और उसने अपनी बहन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिए राम को मार डालने का मन बनाया, लेकिन जब उसे यह ज्ञात

हुआ कि राम के साथ उसकी पत्नी सीता भी है तो उसने अपना विचार बदल दिया और यह सोचकर कि किसी की प्रतिष्ठा पर आक्रमण करना कितना घातक होता है, उसने सीता का अपहरण करने की योजना बनाई।

रावण को बताया गया कि राम और लक्ष्मण दण्डक वन में पंचवटी में आश्रम बनाकर वास कर रहे हैं। वह दण्डक वन ही आ गया और अपने मामा मारीच से सहायता का निवेदन करने लगा।

रावण जानता था कि मारीच मायावी शक्ति में निपुण है। वह जैसा भी रूप चाहे बना सकता है। अतः उसने मारीच से मिलकर अपना विचार उसके सामने रखा। जब मारीच ने यह सुना कि रावण सीता को चुराने के लिए यहां आया है तो उसकी बुद्धि का मुख्य यंत्र क्रियाशील हो गया और वह बोला—

“हे रावण! मित्र के रूप में तुम्हारा ऐसा कौन-सा शत्रु है, जिसने तुम्हें सीता के अपहरण की यह सलाह दी। ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जिसे तुम्हारा सुख, वैभव और ऐश्वर्य अच्छा नहीं लग रहा है और वह तुम्हारा विनाश करने पर तुला है। वह अवश्य ही कोई दुष्ट है, जिसने सीता के हरण के बहाने तमाम राक्षस समुदाय का नाश करने का विचार किया है। अरे मूर्ख! राम तो वह गंध-युक्त गजराज है, जिसकी गंध सूंघकर ही योद्धा भाग जाते हैं। फिर अकारण उससे शत्रुता नहीं लेनी चाहिए। शायद तुम राम को नहीं जानते।

बहुत पुरानी बात है, महर्षि विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे और राम चौदह-पन्द्रह वर्ष का राजकुमार था। तब इसने मेरे सामने ही मेरी बहन ताडका को मृत्यु के घाट उतार दिया और एक ही बाण से मुझे सौ योजन दूर समुद्र में फेंक दिया और सुबाहु सहित अनेक वीर राक्षस मार गिराए थे।

ऐसे बलशाली राम को उसकी पत्नी का हरण करके शत्रु बनाने का परामर्श कोई तुम्हारा घोर शत्रु ही दे सकता है, मित्र नहीं। जाओ, अपनी लंका लौट जाओ और जो सुख-वैभव तुम्हारे पास है, उसका उपभोग करो। तुम्हारा हित इसी में है।”

रावण को मारीच की बात जंच गई और वह लंका लौट आया।

यहां जब शूर्पणखा ने देखा कि मामा मारीच के बहकाने से रावण ने प्रतिशोध लेने का मन बदल लिया है तो उसने रावण को फटकारते हुए कहा, “तुम तो वीरों में श्रेष्ठ हो निशाचर पति! जिसे इस त्रैलोक्य में कोई परास्त नहीं कर सकता। फिर भी तुम खर-दूषण जैसे महावीरों के मरण पर और अपनी बहन के अपमान पर चुप बैठ जाओगे, तुम्हारा रक्त इतना ठंडा हो गया है? मैंने तुम्हें तेजस्वी भाई समझा था, लेकिन तुमसे अधिक तेजवान तो लक्ष्मण है जिसने अपने भाई के एक बार कहने पर मुझे अंगहीन कर दिया। और वह राम, जिसने हमारे चौदह हजार राक्षस मार डाले।

मैं तो कहती हूँ कि तुम्हें राम की उस पत्नी को, जिसे अपने रूप पर अभिमान है, उसका अपहरण करके अपने महल में, अपनी रानी बनाना चाहिए। जब राम अपनी पत्नी का वियोग

सहने को बाध्य होगा, तब उसे ज्ञात होगा किसी का अपमान करने का फल क्या होता है।”

शूर्पणखा से यह सुनकर रावण उत्तेजित हो उठा। अब उसके मन में सीता का रूप-सौंदर्य छा गया। वह उसके सुन्दर तपाए शरीर की सुवर्ण कान्ति को अपने भुजदंडों में देखना चाहता था। उसके लाल-लाल नख, शुभ लक्षणों से सम्पन्न माथा, सुन्दर कटि प्रदेश, सुडौल अंग, यह साक्षात् रतिरूप विदेहराज जनक की कन्या अब उसके रंगमहल की शोभा अवश्य बनेगी।

जिस प्रकार शूर्पणखा ने उसके रूप का बखान किया है, तब तो अवश्य ही देवों, गन्धर्वों, यक्ष, किन्नरों की स्त्रियों में भी उसके समान कोई सुन्दर नहीं होगी।

वह कितना सौभाग्यशाली होगा, जिसकी भार्या सीता हो और जो उसका हर्ष से भरकर आलिंगन करे। उसका जीवन तो इन्द्र से भी अधिक भाग्यशाली है। शूर्पणखा ने ही उसे बताया कि उसका एक-एक अंग स्पृहणीय है, स्वभाव उत्तम है। निश्चय ही हे भाई! तुम उसके योग्य श्रेष्ठ पति हो।

रावण को उकसाते हुए शूर्पणखा ने कहा—

“यदि तुम्हें सीता को अपनी भार्या बनाने की इच्छा है तो अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाओ और राम को जीतने के लिए प्रस्थान करो।

जिस राम ने हमारे जन-स्थान में निशाचरों सहित खर और दूषण को मौत के घाट उतारा है, उसे तो उसके दुष्कृत्यों का फल मिलना ही चाहिए।”

जब मारीच ने फिर से रावण को अपने पास आया देखा तो वह भौंचक रह गया।

“तुम्हारी लंका में सब कुशल तो है? तुम इतनी जल्दी फिर वापस कैसे आ गए?”

“सुनो मामा! तुम स्वर्ण मृग बनकर राम की पंचवटी के बाहर भ्रमण करना और जब सीता तुम्हें देखकर तुम पर मोहित हो राम को तुम्हारे पीछे भेजे तो उसे इतनी दूर ले जाना कि वह स्थान कम-से-कम दस योजन दूर हो और जब तुम राम के बाण से घायल हो जाओ तो ‘हा लक्ष्मण’ और ‘हा सीता’ चिल्लाना ताकि कुटिया में बैठी हुई सीता राम को संकट में जानकर लक्ष्मण को उसकी सहायता के लिए भेज दे और इस तरह मैं उसे अकेली पाकर अपना वास्तविक रूप दिखाकर इस दिव्य पुष्पक विमान पर हर लाऊंगा।”

“हे रावण! मुझे तो लगता है, यह जनकनंदिनी सीता तुम्हारा वध करने के लिए ही जन्मी है। तभी तो तुम इतनी उद्वेगता से इस संकट को अपने ऊपर ले रहे हो। तुम समझते हो, राम श्रीहीन है। अरे, वह तो कैकेयी द्वारा पिता को धोखे में डालकर मांगे वर के कारण, पिता के वचन को मिथ्या न करते हुए स्वयं धन-सम्पदा का त्याग करके दण्डक वन में आया है। अरे वह क्रूरकर्मा नहीं है, न मिथ्याभाषी है और यह भी जान लो कि उसकी पत्नी सीता अपने ही पतिव्रत्य के तेज से सुरक्षित है। तुम भयानक प्रज्वलित अग्नि में प्रविष्ट होने का खेल क्यों खेल रहे हो रावण?

अरे, जिस व्यक्ति ने शिव के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर सीता का वरण किया है, जिसने महर्षि परशुराम के वैष्णव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी और उनके पुण्य लोकों का नाश कर

दिया, उन राम को तुम साधारण मानव समझ रहे हो। तुम तो बहुत मूर्ख हो रावण”

“सुनो मारीच! मैंने तुम्हारा बहुत सम्मान किया है। मैं तुमसे यहां राम की प्रशंसा या सीता के पतिव्रत्य धर्म पर भाषण सुनने नहीं आया। मैं जो आदेश देता हूं या तो उसका पालन करो, वरना मेरे हाथ से मरने के लिए तैयार हो जाओ। जिस व्यक्ति का सम्मान दांव पर लग गया हो, जिसकी बहन के नाक-कान काट लिये गए हों, वह अपने शत्रु से बदला अवश्य लेगा। फिर भले ही परिणाम कुछ भी हो। जाओ और जैसा मैंने कहा है, वैसा ही करो।”

मारीच को कि अब मृत्यु सन्निकट है। पहली बार वह राम के बाण से बच गया था, लेकिन अबकी बार प्राण जाने ही हैं तो फिर इस दुष्ट पापी रावण के हाथ से मरने की अपेक्षा राम के हाथ से ही मरना मेरे लिए उचित है।

यह सोचते हुए मारीच स्वर्ण मृग बनकर कुलाचें भरता हुआ पंचवटी पहुंच गया।

मारीच ने बड़ा ही सुन्दर रूप धारण कर रखा था। उसके सींगों के ऊपरी भाग इन्द्र नीलमणि के बने हुए जान पड़ते थे, मुखमंडल पर सफेद और काले रंग की बूंदें थीं, मुख का रंग लाल कमल के समान था, उसके कान नीलकमल से थे, गर्दन ऊंची थी। वह समूचा स्वर्ण की कान्ति वाला था।

सैकड़ों रजत बिन्दुओं से युक्त यह विचित्र रूप धारण करने वाला मृग वृक्षों के कोमल पत्तों को खाता हुआ वहीं पंचवटी के पास इधर-उधर विचरने लगा। केले के बगीचे में जाकर वह कनेरों के कुंज में जा पहुंचा, जहां सीता की दृष्टि उस पर पड़ सके और धीमी चाल से घूमने लगा।

कभी खेलता-कूदता आश्रम के द्वार पर आकर मृगों के झुंड के पीछे चल देता। उसके मन में यही अभिलाषा थी कि सीता उसकी तरफ देखे और फिर सीता, जो वहां फूल चुनने में लगी थी, उसने उस कंचन मृग को अपनी आंखों से देखा तो आश्चर्य से प्रसन्न हो उठीं और बड़ा स्नेह से उसे देखने लगीं।

वह तो मायावी मृग था, सीता को लुभाता उन्हीं के आसपास मंडराने लगा।

सीता ने ऐसा मृग पहले कभी नहीं देखा था। यह तो मानो रत्नों से बना हुआ है।

फूल चुनते-चुनते ही सीता प्रसन्न हो उठीं और वहीं से राम-लक्ष्मण को धनुष बाण लेकर आने के लिए कहने लगीं। वह मृग को देखती जातीं और राम-लक्ष्मण को पुकारती जातीं, “हे आर्य पुत्र! शीघ्र आइए, धनुष के साथ आइए।”

सीता के पुकारे जाने पर राम जब वहां पहुंचे और उनके पीछे-पीछे लक्ष्मण भी पहुंच गए तो दोनों ने ही उस स्वर्ण मृग को देखा।

लक्ष्मण को तो इसे देखते ही मन में संदेह पैदा हो गया और वे बोले—

“भैया! मैं इसे पहचान गया हूं। यह तो मारीच राक्षस है, जो स्वेच्छा से वेश धारण करके,

कपट वेश बनाकर वन में शिकार खेलने आए कितने ही राजाओं का वध कर चुका है। यह तो बड□। मायावी है। मृग के रूप में यह मारीच ही है।”

लेकिन सीता की विचार-शक्ति को मृग ने छल लिया था। अतः लक्ष्मण को रोककर उन्होंने राम से कहा—

“आर्य पुत्र ! इस मृग ने मेरा मन हर लिया है। आप इसे पकड□ लाइए। यदि जीवित पकड□ लिया गया तो हमारे मन बहलाव का साधन बनेगा और यदि आप मृत पकड□ लाए तो इसकी चर्मशाला बनेगी।”

सीता की बात सुनकर और उस मृग के रूप पर मुग्ध होकर राम ने लक्ष्मण से कहा—

“देखो लक्ष्मण ! इस मायावी मृग को पाने के लिए सीता के मन में कितनी इच्छा जाग रही है। वास्तव में इसका रूप है भी बहुत सुन्दर। देवराज इन्द्र के नंदन वन में भी ऐसा मृग नहीं होगा। यह जब जम्हाई लेता है तो मुख से बिजलियां निकलती हैं। इसे देखकर किसके मन में विस्मय नहीं होगा। और फिर मृगया तो क्षत्रियों का धर्म है। चलो, आज यह मृग ही सही। फिर यदि तुम्हारे कहने से यह राक्षस की माया है तो मुझे इसका वध तो करना ही है, क्योंकि दुष्ट चित्त वाले इस मारीच ने पता नहीं कितने लोगों को मृत्यु के मुख में पहुंचाया है।”

“देर न कीजिए आर्य ! नहीं तो मृग चला जाएगा। देखिए न, वह कितनी दूर चला गया है।”

सीता को इतना उतावला होते देख राम ने लक्ष्मण से कहा, “देखो लक्ष्मण, सीता कितनी उत्कंठित हो रही है। मैं मृग के पीछे जा रहा हूं, तुम यहां सीता का ध्यान रखना।”

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में अपने एकान्त कक्ष में बैठी सीता विचार कर रही थीं—आज कितने दिन हो गए उसको यहां आए हुए, सप्ताह, पखवाड□, मास और ऋतु। अब ग्रीष्म ऋतु आने वाली है और अनुमानतः मासान्त तक वह पुत्रवती भी हो जाएगी। कितने संकट में बीता था यह सब, लेकिन अपने अपहरण प्रसंग को याद करते हुए वे सोच रही थीं, तब उनकी बुद्धि को क्या हो गया था ?

जैसे ही वन से ‘हा सीते’ और ‘हा लक्ष्मण’ की आवाज आई और वे चौंक गईं। उन्हें लगा कि उनके पति संकट में हैं। पास ही रक्षा के लिए सचेत लक्ष्मण को बुलाकर उन्होंने कहा—

“देवरजी ! सुना तुमने ? मेरे और तुम्हारे नाम की आवाज आ रही है। यह अवश्य ही तुम्हारे भैया की आवाज है। मुझे लगता है, उनके प्राण संकट में हैं। तुम्हें उनकी रक्षा के लिए जाना चाहिए।”

“भाभी ! आज आपको क्या हो गया है ? सुबह सवेरे आपने भैया राम को उस मायावी मृग के पीछे भेज दिया और अब मुझे भी यहां से भेजना चाहती हो। आपको ज्ञात है, यह वन कितने हिंस्र पशुओं से भरा पड□ है और यह जो मायावी मारीच है, यह इसकी एक चाल है। राम को भला इस जग में संकट में डालने वाला है कोई ? नहीं भाभी, आप अनावश्यक घबरा रही हैं। यह तो इस राक्षस की एक चाल है। इस बहाने यह मुझे यहां से हटाना चाहता है, ताकि आपका अहित

कर सके।”

दूसरी ओर राम ने जब मारीच के मुख से अपना नाम सुना तो आश्चर्य में पड़ गए। अब उन्हें अपनी गलती का अनुभव हुआ और लगा कि लक्ष्मण सही कह रहा था, यह अवश्य ही मायावी मारीच है। यह तो मेरी ओर से सीता और लक्ष्मण की पुकार कर रहा है।

यदि यह सुनकर सीता ने हठ करके लक्ष्मण को मेरी सहायतार्थ भेज दिया तो अनर्थ हो जाएगा, क्योंकि तब अवश्य अकेली सीता पर कोई भारी संकट आ सकता है।

यह सोचकर राम तो जल्दी-जल्दी अपने आश्रम की ओर बढ़ने लगे, लेकिन इधर सीता ने लक्ष्मण को राम की सेवा में जाने के लिए बाध्य कर दिया।

लक्ष्मण ने जब कहा, “भाभी! आप चिंता न करें, राम सुरक्षित हैं और मुझे वे आपकी रक्षा के लिए छोड़ गए हैं। यह मेरा दायित्व है। मैं इससे पीछे नहीं हट सकता। उनका आदेश मैं यूँ ही नहीं टाल सकता।”

“तो तुम आदेश की आड़ लेकर अपने भाई की पुकार नहीं सुनोगे?”

“यह मेरे भाई राम की आवाज नहीं है। उन्हें कुछ नहीं हो सकता। यह छली मारीच की आवाज है, जो पहले तुम्हें रूपरंग की चमक से छलकर राम को यहां से दूर ले गया और अब मुझे मेरा ही नाम पुकारकर यहां से दूर करना चाहता है, ताकि मैं चला जाऊँ और तुम अकेली रह जाओ, जिससे दुष्ट राक्षस की चाल की शिकार हो जाओ।”

“हे सुमित्रा कुमार! तुम विलम्ब कर रहे हो, मुझे तो तुम भाई के शत्रु ही जान पड़ते हो। इसीलिए संकट की अवस्था में सहयोग के लिए जाने में आनाकानी कर रहे हो। मुझे तो सन्देह हो रहा है कि तुम मुझ पर अधिकार करने के लिए इस समय राम का विनाश ही चाहते हो। मुझे लगता है तुम्हारे मन में लोभ आ गया है।”

“यह आप क्या कह रही हैं भाभी! वनवास काल के तेरह वर्ष बीत चुके हैं और तुम अब इन अंतिम घड़ियों में दोषारोपण कर रही हो?”

“यदि ऐसा नहीं होता तो तुम उनकी रक्षा के लिए नहीं जाते? आखिर तुम उन्हीं की सेवा के लिए तो वन में आए हो, यदि उन्हीं के प्राण संकट में पड़ गए तो यहां मेरी रक्षा कौन करेगा?”

यह कहती हुई सीता विलाप करने लगीं। उनकी आंखों से आंसू बह निकले।

फिर भी लक्ष्मण ने साहस करके कहा—

“भाभी...!”

“मत कहो मुझे भाभी! तुम्हारे मन में मेरे प्रति पाप समा गया है पर ध्यान रखो, यदि उनका कुछ भी अनिष्ट हुआ तो मैं अग्नि-समाधि ले लूंगी, किन्तु तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण नहीं करूंगी।”

“आपको मां मानता हूँ और आप मेरे प्रति इतना बड़ा पाप का लांछन लगा रही हैं। शायद आपको पता नहीं, यह वही मारीच है, जिसे वन में ताड़का को मारने के बाद श्रीराम ने महर्षि

विश्वामित्र के यज्ञ-भंग करने के अपराध में एक ही बाण से सौ योजन दूर समुद्र में फेंक दिया था। इसके साथी और ताड़का-पुत्र सुबाहु को भी मार डाला था। और फिर इस लोक में तो क्या देव और पाताललोक में भी श्रीराम को कोई परास्त नहीं कर सकता। जो युद्धभूमि में इन्द्र को भी परास्त करने का साहस रखता हो, उसे यह राक्षस कैसे क्षति पहुंचा सकता है। राम का तो ये दुष्टजन बाल भी बांका नहीं कर सकते। अतः आप अपना हृदय शान्त रखें और संताप छोड़ दें।”

“हे निर्दयी! अनार्य! क्रूरकर्मा! कुलांगार! अब मैं तुझे खूब समझ गई हूं। तू यही चाहता है कि राम विपत्ति में पड़ जायें। तू तो बड़ा दुष्ट है। तू राम को अकेले वन में आता देख मुझे प्राप्त करने के भाव से ही इनकी सेवा का बहाना लेकर यहां आया है और क्या भरोसा भरत ने तुझे भेजा हो? लेकिन याद रख, तेरा या भरत का यह मनोरथ कभी पूरा नहीं होगा। राम के अतिरिक्त मैं किसी की कामना कैसे कर सकती हूं! या तो तुम मेरा आदेश मानकर राम की रक्षा के लिए चले जाओ, वरना मैं अभी इसी समय अपने प्राण त्याग दूंगी।”

सीता के ये कठोर वचन किसी का भी हृदय दुखा सकते थे, फिर लक्ष्मण तो वास्तव में एक समर्पित भाई थे। वे हाथ जोड़कर बोले—

“आप जो कुछ कह रही हैं—आपके लिए आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि आप भी तो स्त्री हैं, एक सामान्य स्त्री! संसार की नारियों से भला आप अलग कैसे हो सकती हैं! आपको इस समय मेरी बात पर विश्वास नहीं आएगा, लेकिन मेरे जाने के बाद यदि कोई संकट उपस्थित हो गया तो आप क्या करेंगी? यह सोचा है?”

यहां वन में कितने हिंस्र पशु हैं। राक्षसों से यह प्रदेश पहले ही आतंकित है। आप नहीं जानतीं कि ये राक्षस कितने मायावी हैं, जो नाना प्रकार के रूप धारण करने में कुशल और नाना बोलियां बोलने में चतुर हैं। आप उनसे अपनी रक्षा कैसे करेंगी? यदि आपको कुछ हो गया तो मैं राम को क्या उत्तर दूंगा?”

“तुम्हें अपने भाई की सौगन्ध लक्ष्मण! जाओ, उनकी रक्षा करो। यही इस समय तुम्हारा धर्म है।”

मन में सोचते हुए लक्ष्मण कहने लगे, ‘मेरा क्या धर्म है यही तो सोच रहा हूं, किन्तु लगता है कि आप किसी अनिष्ट को कराकर ही मानेंगी।’

और फिर वन में विचरने वाले पशु-पक्षियों को साक्षी करते हुए लक्ष्मण ने चीखते हुए कहा—

“सभी मेरा कथन सुनें—मैंने न्याययुक्त बात कही है, फिर भी जानकी की मेरे प्रति यह कठोर वाणी मेरा हृदय बेध रही है। निश्चय ही आज इनकी बुद्धि मारी गई है। यह अपने लिए संकट को आमंत्रित कर रही हैं। अतः हे वन देवतागण! आप देवी सीता की रक्षा करें। इस समय मुझे अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं। इसलिए मैं संशय में हूं। पता नहीं फिर सीता भाभी को सकुशल देख सकूंगा या नहीं?”

अभी भी लक्ष्मण विचारमग्न थे।

यह देखकर सीता ने रोते हुए कहा—

“लक्ष्मण! मैं राम से बिछुड़कर गोदावरी में समा जाऊंगी या पर्वत शिखर पर चढ़कर वहां से अपने शरीर को नीचे धकेल दूंगी या अग्नि में समा जाऊंगी, किन्तु राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का स्पर्श तो क्या विचार भी कभी नहीं करूंगी।”

लक्ष्मण के सामने यह प्रतिज्ञा करके सीता शोकमग्न दोनों हाथों से अपने वक्ष और टांगों पर आघात करने लगीं।

सीता की यह दशा देख लक्ष्मण विचलित हो उठे और सीता को समय के भरोसे छोड़कर राम की खोज में चल दिए।

रावण तो बहुत देर से मानो इसी ताक में था। जैसे ही लक्ष्मण दृष्टि से ओझल हुए, वह दुष्ट मायावी साधु वेश में कमण्डल हाथ में लिये सीता की कुटिया के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

शरीर पर गेरुए वस्त्र, मस्तक पर शिखा धारण परिव्राजक बना रावण सीता को अकेला जान उनकी कुटिया के पास आकर भिक्षा मांगने लगा।

ज्योंही रावण ने सीता की पूर्णकुटी के बाहर आकर गुहार की तो जनस्थान में आतंक-सा छा गया। हवा का वेग रुक गया, पत्तों ने हिलना बन्द कर दिया और अपनी गति से बहने वाली गोदावरी नदी भय के मारे धीमी हो गई।

राम से बदला लेने का अवसर ढूंढने वाला रावण भिक्षुरूप में सीता के पास पहुंचा।

सीता को बाहर की कुछ खबर नहीं थी। वह तो अपने पति के लिए शोक और चिन्ता में डूबी हुई थी और रावण उन्हें खड़ा-खड़ा देख रहा था।

सीता को देखकर उसके मन में कुत्सित विचार आ गए—

‘यह तो बहुत सुन्दर है। तीनों लोकों में ऐसी सुन्दरी कहां होगी?’

सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए रावण ने उससे कहा—

“साक्षात् लक्ष्मी अथवा अप्सरा की तरह हे कमलनयनी! तुम कौन हो? और इस दण्डकारण्य में किसलिए अकेली यहां वास कर रही हो? यह तो घोर राक्षसों से घिरा दण्डकारण्य है। यहां तुम अकेली कैसे रहती हो?”

सीता का ध्यान भंग हुआ और उन्होंने देखा कि उनके सामने गेरुआ वस्त्र धारण किए एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है।

शीघ्रता से सीता ने उस अतिथि का अर्घ्य देते हुए स्वागत किया और अतिथि-सत्कार के लिए उपयुक्त सभी सामग्रियों द्वारा उसका पूजन किया तथा उत्तम आसन पर बिठाते हुए उससे कहा—

“ब्राह्मण! भोजन तैयार है, ग्रहण कीजिए। यह आसन है, इस पर स्थान ग्रहण कीजिए और वन

में उपलब्ध जो फल-मूल यहां उपस्थित हैं, उन्हें ग्रहण कीजिए।”

ब्राह्मण वेशधारी उस संन्यासी के वास्तविक रूप से वह भोली नारी सीता परिचित नहीं थी, लेकिन रावण के मन में उनका हरण करने का विचार दृढ़ था। अतः अपने भोलेपन में सीता ने आसन ग्रहण किए हुए उस ब्राह्मण तपस्वी को अपना सम्पूर्ण परिचय दिया और यह बताया कि वे यहां पर अपने पति श्रीराम और देवर लक्ष्मण के साथ पिता द्वारा दिए गए चौदह वर्ष का वनवास काल बिता रही हैं।

सीता का परिचय पाकर रावण ने अपना परिचय देते हुए उसे बताया—

“जिसके नाम से देवता, असुर और मनुष्य सहित तीनों लोक थर्रा उठते हैं, मैं वही राक्षसों का राजा, महर्षि विश्रवा का पुत्र रावण हूं।”

“हे अनुपम सुन्दरी! तुम्हारे इस स्वर्णिम सौन्दर्य ने मुझे तुम्हारे प्रति आकृष्ट कर दिया है। अब मेरा मन अपनी स्त्रियों से विरक्त हो गया है। मैंने अपने जीवन में न जाने कितनी स्त्रियों को हरकर उन्हें अपनी पटरानी बनाया, लेकिन तुम्हें देखकर मुझे लगता है कि वे सब तो तुम्हारे सामने कुछ भी नहीं। वास्तव में तुम मेरी पटरानी बनने योग्य हो।

मेरी राजधानी लंका है, जो समुद्र के बीच त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई है। यदि तुम मेरी भार्या हो जाओ तो वे सब जो आज तक मेरी रानी बनी हुई हैं, दासी बनकर तुम्हारी सेवा करेंगी।”

सीता ने जब यह सुना और एक ब्राह्मण के बदलते हुए इस विकृति स्वरूप को देखा तो वे घबरा उठीं। यह तो अनर्थ हो रहा है। जिसे मैंने अतिथि समझा, वह तो लुटेरा है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि मैंने लक्ष्मण को भेजकर गलती की। यह तो वास्तव में राम और लक्ष्मण को मुझसे दूर करने की सोची-समझी चाल थी।

और अब तो लक्ष्मण भी बहुत दूर चले गए होंगे।

‘हे प्रभु! मुझसे यह कैसा अपराध हो गया। अब इस दुख से मैं अपने आपको कैसे बचा पाऊंगी!’ सीता सोच रही थीं और फिर मन में अपने दुर्बल भाव को दबाते हुए, क्रोध को झलकाते हुए वह जनकनंदिनी राक्षस का तिरस्कार करती हुई बोली— तुम कोई भी हो, मैंने तुम्हें ब्राह्मण जानकर तुम्हारा आतिथ्य किया। स्मरण रखो, मेरे पति श्रीराम बल में इन्द्र के समान, गंभीरता में महासागर के समान हैं और मैं उनकी ही अनुरागिनी हूं। तुम मेरे प्रति ऐसे कुविचार मन में मत पैदा करो, क्योंकि यदि राम तुम पर क्रुद्ध हो गए तो तुम्हारा जीवन संकट में पड़ जाएगा।”

रावण ने यह सुना तो वह अट्टहास करने लगा और उसके चेहरे पर कुटिलता झलक आई।

इससे सीता और भयभीत हो उठीं और बोलीं—

“अभागो! तेरा इतना साहस कि तू कुटिलतापूर्वक अट्टहास करता है। तू मेरा अपहरण करना चाहता है। क्या तुझे अपनी मृत्यु का बिलकुल भय नहीं?”

“तू नहीं जानती भोली स्त्री! रावण को ब्रह्म का वरदान है कि उसे देवता, गन्धर्व, राक्षस, दैत्य, दानव, यक्ष, किन्नर कोई नहीं मार सकता, मनुष्य की तो बिसात ही क्या! तू राम को क्या समझती है?”

“जिसने तेरे विराट बलशाली खर-दूषण को उसकी सेना सहित अकेले मार गिराया था, जिसने मारीच और सुबाहु जैसे राक्षसों को अपने बाण से सौ योजन दूर फेंक दिया और मार डाला, राक्षसी शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले...”

“बस, बस...मैं देखूंगा उस राम का बल, जिसने मेरी बहन की प्रतिष्ठा में यह अपराध किया है। शूर्पणखा मेरी बहन थी दुष्टा! और तुमने उसका अपमान किया। इस अपमान का बदला मैं तेरा अपहरण करके लूंगा और फिर देखता हूँ कि राम मेरा क्या कर लेगा?”

“तो यह स्वर्ण मृग भेजकर राम को मुझसे दूर करने का तुम्हारा ही षड्यंत्र था?”

“हां, मेरा ही था और मैंने ही मारीच से यह रूप धरकर तुम्हें भ्रमित करने की योजना बनाई थी।”

“वह समझता है कि मेरी छोटी-सी सेना को और उसके सेनानायक को मारकर वह मुझ पर अपना भय का प्रभाव दिखा सकता है। मैं उसे बताऊंगा कि मैं कितना शक्तिशाली हूँ।”

रावण यह भूल गया कि पूर्वजन्म में जिस तपस्विनी वेदवती का उसने अपमान किया था, यह सीता उसी का पुनर्जन्म है।

विधाता ने रावण की बुद्धि हर ली और सीता के विरोध के बाद भी रावण ने एक हाथ उसकी कमर में डाला उन्हें अपने कंधे पर बिठा लिया। सीता चीखती-चिल्लाती रह गई।

रावण उस समय पूरी तरह निर्दयी हो गया था।

जिसने अपने पिता समान बड़का भाई के प्रति अत्याचार करने में कोई कमी नहीं छोड़ी और उसे लंका छोड़ने पर बाध्य कर दिया, वह रावण सीता पर क्या दया करता! अब हाथ-पैर मारती सीता को अपने भुजदंडों से दबोचे वह पुष्पक विमान की ओर बढ़ने लगा।

यह विकराल दृश्य देखकर हवा जो ठहर गई थी, भयानक आंधी की तरह चलने लगी; पत्ते जो सहम गए थे, जोरों से फड़फड़ाने लगे; पक्षी जो डर गए थे, वे भय से थर्राकर भयानक कलरव करने लगे, हिरण इधर-से-उधर तेजी से बौखलाए हुए कुलाचेँ भरने लगे, हाथी चिंघाड़ उठा, सिंह ने हृदयविदारक गर्जना की, कुछ ही क्षणों में वह पूरा जनस्थान एक विचित्र बौखलाहट से भर गया। सारी रमणीयता एक क्षण में आन्दोलन की मुद्रा में आ गई। सामान्य स्थितियाँ एक पल में ही असामान्य हो गईं। आकाश में बादल छा गए। घनघोर घटाएं पूरे वेग से पृथ्वी को आप्लावित करने लगीं। वृक्ष टूटकर गिर गए। पर्वत शिखरों से पत्थर लुढ़कने लगे। भयंकर विध्वंस-सा होता दिखाई पड़ने लगा, लेकिन दुष्ट रावण इनमें से किसी भी उत्पात से भयभीत नहीं हुआ। वह तो बलात् सीता को अपने दोनों भुजदंडों में दबाए चला जा रहा था, पुष्पक विमान की ओर।

“तू कितना भी प्रयत्न कर ले, मेरे चंगुल से नहीं छूट सकती। मैं अब तुझे अपनी पटरानी बनाकर ही मानूंगा। राम के प्रति तेरा अनुराग नष्ट न कर दूँ तो मेरा नाम रावण नहीं। अरी मूर्खा! जिसे पिता ने राज्य से वंचित करके वनवास दे दिया हो, वह तेरी क्या सहायता कर पाएगा? भला दो आदमियों से एक विशाल राज्य काबू में आ जाएगा?”

अब सीता के पास विलाप के अतिरिक्त कोई अस्त्र नहीं था। वह ‘हे राम’ कहकर जोर से पुकार करने लगी।

और रावण ने उनकी पुकार को अनसुना करते हुए उन्हें अपने बाहुबल से पुष्पक विमान पर एक ओर पटक दिया और कहा—

“ले बैठ यहां और अपने उस वनवासी राम को याद कर। कुछ ही पलों में मेरा यह विमान तेरे राम की क्षमता से बाहर निकल जाएगा।”

झुंझलाती हुई सीता ने कहा—

“दुष्ट! तेरे सिर पर काल नाच रहा है। तेरा विवेक समाप्त हो गया है। बुद्धि विपरीत हो गई है। तूने जो पाप किया है, उसका दंड केवल तेरी मृत्यु है, जो राम के हाथों होगी।”

रावण ने निर्लज्ज अट्टहास करते हुए उससे कहा—

“क्यों निरर्थक अपना मुंह दुखाती हो। राम अब इस जीवन में मुझे नहीं पा सकेगा। तू कहाँ है, उसे तो यह भी ज्ञात नहीं हो पाएगा और यदि उसे किसी प्रकार से यह पता लग भी गया तो मेरी लंका में उसे प्रवेश नहीं मिल सकेगा। यदि लंका में भी वह आ गया तो मेरी विशाल सेना के सामने उसका कोई वश नहीं चलेगा। उसके शरीर को सिंह नहीं, भेड़िए खाएंगे और मेरे राक्षस अनुचर उसकी हड्डियों को समुद्र में फेंक देंगे।”

क्षण-भर के लिए सीता सकते में आ गई, यह क्या हो गया? उनके किस दुष्कर्म का यह फल उनके सामने आया है?

तब उसके मन में अभी रावण से पहले लक्ष्मण के साथ हुआ उनका व्यवहार कौंध गया।

उन्होंने देवता समान भक्त-पुत्र के प्रति कितनी लज्जित बात कही। जो लक्ष्मण छोटे भाई के समान रहा, जिसने भाई की सेवा के लिए अपने निजि सुख का त्याग किया, उस लक्ष्मण पर सीता ने कुविचार का आरोप लगाया और यह कहा कि वह सीता के प्रति कामभावना से ग्रस्त है, वह उसे हथियाना चाहता है, राम का अनिष्ट देखना चाहता है। आह! कहते हुए ज्योंही उनके हाथ अपने कुंडलों की ओर गए, उनकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। अब वे राम की पुकार करती जा रही थीं और विमान दण्डक वन के ऊपर होता हुआ लंका की दिशा में बढ़ रहा था।

किसी स्त्री की करुण पुकार सुनकर वृक्ष पर बैठे गिद्धराज जटायु ने अपने ऊपर से एक दिव्य विमान को उड़ते हुए देखा तो उन्होंने सीधे विमान पर छलांग लगा दी। जटायु ने देखा, अरे! यह तो रामप्रिया सीता हैं, जो दुष्ट रावण के चंगुल में फंसी करुण क्रन्दन कर रही हैं और यह निर्दयी रावण उन्हें हरकर ले जा रहा है।

वह जान गया कि इस निशाचर को रोक पाना उसके वृद्ध शरीर के वश का नहीं है।

फिर भी रावण से कहा—

“देखो दशग्रीव! तुम जो निन्दित कर्म कर रहे हो, वह तुम्हारे जैसे वीर को शोभा नहीं देता। ये तो राम की धर्मपत्नी सीता हैं और तुम धर्म में स्थित रहने वाले राजा। फिर भला पराई स्त्री को तुमने कैसे छुआ? राजा को तो विशेष रूप से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। बुद्धिमान पुरुष को वह कर्म नहीं करना चाहिए, जिसकी दूसरे लोग निंदा करें। तुम तो पुलस्त्य कुलनन्दन हो, फिर तुममें इस दुष्प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव कैसे हुआ? मुझे तो आश्चर्य हो रहा है कि जब तुम्हारा स्वभाव ऐसा पापपूर्ण है और तुम इतने कामी और नीच हो, तब देवताओं के विमान की भांति तुम्हें यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया? फिर जब राम ने तुम्हारे राज्य अथवा नगर में कोई अपराध नहीं किया, तब तुम यह अपराध कैसे कर रहे हो?”

सीता ने कहा—

“हे गिद्धराज! यह दुष्ट शूर्पणखा के बदले में मेरा अपहरण कर लाया है।”

“शूर्पणखा के बदले में? इसमें राम ने क्या अपराध किया? अरे, वह दुष्ट नारी जब किसी सत्य प्रतिज्ञा पुरुष का शील भंग करने के लिए अपने दानवीय स्वरूप का आरोप करने लगी तो उसके साथ तो यह व्यवहार होना ही था और रही खर-दूषण की बात तो उन्होंने तो बिना सोचे-विचारे ही राम का अपमान करते हुए और उन्हें अकेला जानकर, कमजोर जानकर आक्रमण कर दिया। अरे, यदि आप शत्रु की पूरी क्षमता नहीं पहचानेंगे और पूरी सेना के साथ आक्रमण कर देंगे तो मरेंगे ही। हे रावण! तुम यह भूल गए कि तुम सीता का हरण नहीं कर रहे, बल्कि भयानक विषधर को अपने कपड में बांध रहे हो। तुम्हें आज नहीं सूझ रहा, लेकिन ध्यान रखो कि तुम अपने गले में मृत्यु का फंदा फंसा रहे हो।

अब तक तुम जिस वरदान से अमर्त्य रहे, इस अपहरण के बाद तुम मरणशील हो गए हो रावण! यह मत जानो कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ और तुम नवयुवक हो। मेरे जीते जी तुम वैदेही को नहीं ले जा पाओगे। मुझे अपने प्राण देकर भी वैदेही की रक्षा तो करनी ही है।”

यह कहते हुए वृद्ध गिद्धराज जटायु रावण पर अपनी पैनी चोंच और पंजों के नाखूनों से टूट पड़ा।

पहले तो रावण उस आकस्मिक आक्रमण से भयभीत हो उठा और चोंच के घावों से घायल होकर मूर्च्छित हो गया, लेकिन जटायु आखिर जटायु थे। यद्यपि उन्होंने रावण का धनुष तोड़ दिया, उसके रथ के टुकड़-टुकड़ कर दिए, लेकिन जब रावण को होश आया तो उसने क्रोध में आकर अपनी तलवार से उनके दोनों पंख काट डाले।

पंख कटने पर जटायुराज अशक्त हो गए और खून से लथपथ निराधार से व्याकुल पृथ्वी पर आ गिरे।

सीता ने जब यह देखा तो रावण के चंगुल से मुक्त होने की उनकी आखिरी संभावना भी जाती

रही। अब तक वे किष्किन्धा के पास पहुंच चुके थे और कुछ विचार न करते हुए सीता ने राम की रट लगाते हुए अपने कुंडल, बाजूबंद और कुछ अन्य आभूषण अपनी साड़ी के एक टुकड़े में बांधकर उस पर्वत पर गिरा दिए। कम-से-कम यदि राम यहां तक पहुंचे तो उन्हें यह दिशा-ज्ञान तो हो जाएगा कि वह इस मार्ग से आगे गई हैं।

अब सीता लाचार थीं। इस समय उन्हें किसी प्रकार की सहायता की कोई आशा नहीं थी। वे रावण को उपालंभ देते हुए विलाप कर रही थीं, लेकिन वह पिंजरे में बंद मैना के विलाप जैसा था, क्योंकि दुष्ट आदमी पर भला-बुरा कहने से असर नहीं होता, वह तो शक्ति से उसका मर्दन करने में अपनी विजय समझता है।

रावण इस समय एक विजेता की भांति सीता के रूप में अपनी साक्षात् मृत्यु का अपहरण करके वनों, नदियों, पर्वतों को लांघता समुद्र से होता हुआ धीरे-धीरे त्रिकूट पर्वत पर पहुंच गया।

जैसे ही विमान पर्वत पर उतरा, सीता ने स्वयं को बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से घिरे राजमहल की कैद में अनुभव किया। उन्होंने देखा कि भयानक आकृति वाले बड़-बड़ दैत्य-दानव यहां पहरा दे रहे हैं।

रावण ने सीता को भयानक आकार वाली पिशाचनियों के हाथों सौंपते हुए कहा—

“अब यह तुम्हारे हवाले है, मेरी बिना आज्ञा के इससे कोई नहीं मिल सकता और न कभी तुममें से कोई अप्रिय बात कहेगा। जिसने मेरे आदेश का उल्लंघन किया, मैं समझूंगा कि वह आगे जीना नहीं चाहता। मैंने अपने महान शत्रु से बदला लेने के लिए इसका अपहरण किया है। मुझे वास्तविक शान्ति राम का वध करके मिलेगी।”

‘रावण जनकनंदिनी को हर लाया है।’ इस समाचार ने सबसे अधिक प्रसन्नता शूर्पणखा को पहुंचाई। वह तो खिल उठी। चूंकि रावण का आदेश उससे मिलने का नहीं था, इसलिए वह अपनी इस प्रसन्नता का प्रदर्शन सीता के सम्मुख न कर सकी।

रावण ने अपने अन्तःपुर में सीता को अपना वैभव दिखाते हुए उन्हें बहुत समझाया कि वह हठ छोड़ दे और उसकी पटरानी बन जाए, लेकिन सीता तो केवल रामनिष्ठ थीं। वे रावण जैसे उत्पाती दुष्ट, पापी राक्षस को अपना इष्ट कैसे मान सकती थीं।

उन्हें क्रुद्ध होते हुए रावण से कहा—

“दुष्ट नीच राक्षस! तू मुझे अपहृत करके यहां ले आया, किन्तु ध्यान रख तेरी मृत्यु अब तुझसे अधिक दूर नहीं है। राजकुमार राम की दृष्टि में आते ही तू दो पल भी जीवित नहीं रह पाएगा। यदि तू मुझे सम्मानपूर्वक नहीं छोड़ देता है तो याद रख, अपने इस राक्षस वंश सहित तू और तेरा नाम इस समुद्र में विलीन हो जाएगा। तू जिस रम्यता के स्वप्न देख रहा है, पापी निशाचर! तू अपने गले में स्वयं फांसी का फंदा डाल रहा है।”

कहने को सीता ने उससे ये कड़वी बातें कह अवश्य दी थीं, लेकिन मन-ही-मन वह डर भी रही थीं, क्योंकि यहां उन्हें दूर-दूर तक कोई अपना सहायक नहीं दिखाई दे रहा था। चारों तरफ

राक्षस थे, दुष्ट-ही-दुष्ट और इसके रंगमहल की स्त्रियां कितनी निर्लज्ज! राजमहल के सेवकों के साथ ही प्रेमलीला रचा रही हैं। कितना वीभत्स दृश्य है यह! अस्त-व्यस्त वस्त्रों में कोई एक वस्त्रा है, कोई अर्धनग्न, कोई आलिंगनबद्ध, यहां तो दूर-दूर तक कहीं मर्यादा का नामोनिशान भी नहीं। यह कैसी दुष्ट नगरी है!

रावण ने सीता का हरण तो किया, परन्तु उन पर बलात् संभोग के लिए दबाव नहीं डाला। वह चाहता था कि सीता उसे मन से अंगीकार करे, जो कि त्रिकाल में भी संभव नहीं था। यही सोचकर रावण ने कहा—

“हे देवी! तुम्हारे इन चरणों में मैं अपने ये दसों मस्तक रख रहा हूं। मैंने जिस कामभावना से तुमसे प्रणय-निवेदन किया है, उसे निष्फल न करो। रावण किसी स्त्री को सिर झुकाकर प्रणाम नहीं करता, लेकिन तुम्हारे सामने उसका मस्तक झुका है।”

सीता ने एक तिनके की ओट करके उस निशाचर से कहा—

“क्यों अपने जीवन का अंत करने पर तुले हो? तुम्हारी यह अभिलाषा त्रिकाल में भी संभव नहीं होगी, क्योंकि सीता राम का अंश है, उन्हीं की अर्धांगिनी है। तुमने जिस छल से मेरा अपहरण किया है, वह तुम्हारी कायरता का द्योतक है। तुममें यदि शक्ति होती तो राम के सामने एक योद्धा की तरह, उन्हें परास्त करके मुझे जीतकर लाते, जैसे राम लाए थे मुझे। तुम जानते हो कि मैं वीर्य शुल्का हूं, मेरे पिता ने मेरे विवाह से पूर्व यह प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति महादेव शिव के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसी के साथ सीता का विवाह कर दिया जाएगा। और महर्षि विश्वामित्र-शिष्य श्रीराम ने भरी सभा में उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई, जिसे बड़-बड़ वीर उठाने में सफल नहीं हो सके तो ऐसे राम के द्वारा जीती हुई मैं किसी कायर, लुटेरे और चोर को अपना पति कैसे चुन सकती हूं?”

रावण ने झुंझलाहट में सीता को अशोक वाटिका में क्रूर और निर्दयी राक्षसियों के बीच छोड़ दिया। सीता के लिए नियति को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था।

अपहरण की हुई सीता अशोक वाटिका में एक वृक्ष के नीचे बैठी दुर्दिनों को कोसने के लिए बाध्य थीं।

हनुमान द्वारा सीता की खोज

पर्णकुटी की ओर लौटते हुए जब राम ने लक्ष्मण को अपनी ओर आते देखा तो उन्हें अनिष्ट के सारे संकेत एक साथ दिखाई दे गए। उन्हें निश्चय हो गया कि अब पर्णकुटी में सीता के दर्शन नहीं होंगे, क्योंकि जिसे रक्षा के लिए छोड़कर आया, जब वही मेरी तरफ चला आ रहा है तो इसका मतलब यह हुआ कि दुष्ट मारीच की चाल सफल हो गई। अवश्य ही सीता ने बलपूर्वक लक्ष्मण को भावुकता में आकर उनकी खोज के लिए भेजा होगा, वरना लक्ष्मण सीता को ऐसे छोड़कर आने वाला नहीं था। और यही हुआ। लक्ष्मण ने राम को सारी घटना बताते हुए कहा—

“कोई भाई, कोई देवर या कोई पुत्र जब बहन, भाभी या मां से उसके प्रति कुदृष्टि रखने का लांछन सुनेगा तो वह या तो आत्महत्या करेगा या फिर यथा आदेश-कार्य करने के लिए बाध्य होगा। मेरे सामने भी सिवा वहां से आपकी सेवा में प्रस्थान करने के कोई उपाय नहीं था रघुनंदन!”

जब वे पर्णकुटी में आए तो उनका संदेह सही निकला। कुटिया में सीता नहीं थी। राम के लिए सीता का इस प्रकार न मिलना एक अकस्मात् होने वाला भारी नुकसान था। वह क्षण-भर के लिए मूर्च्छित से हो गए। उन्हें कुटी से बाहर घसीटे जाने के साफ चिह्न दिखाई पड़े। कुछ दूरी पर उनके कर्णफूल, शीशफूल बिखरे दिखाई दिए।

अब वे पशु-पक्षियों से पूछें, दिशाओं से पूछें, नदी, तालाब से पूछें, कौन उत्तर देगा उनके प्रश्न का? सब मौन थे।

सीता के हरण के समय उठने वाला प्राकृतिक उत्पात अब शान्त हो चुका था।

राम इस समय हताश एक वृक्ष के नीचे बैठ गए।

राम को इस प्रकार हताश देखकर लक्ष्मण भी अत्यन्त दुखी हुए। उन्हें अपने ऊपर ग्लानि होने लगी, वे थोड़ी देर के लिए भाभी का क्रोध सहन क्यों नहीं कर पाए? वे कैसे भूल गए कि भावुकता में स्त्री मूर्खता भी कर बैठती है। इसका एक उदाहरण तो वे स्वयं कैकेयी के रूप में देख चुके हैं। राम को वन भेजते समय वह कठोर हृदया सबके लिए एक अबूझ पहेली बन गई थी और चित्रकूट में वही प्रायश्चित्त की मुद्रा में विलाप कर रही थी।

विधाता ने उसे बनाया ही ऐसा है कि उसे क्रोध में अपना आपा खोते और शान्ति में अपनी भूल के प्रति क्षमायाचना करते देर नहीं लगती। भयंकर अपराध करके भी वह पल-भर में बात समझ आने पर उसी भावना से क्षमा की मुद्रा में भी आ जाती है। ये दो अतियों के सिरे और उनके बीच संतरण करती स्त्री इसीलिए पुरुष जगत् के लिए एक पहेली है।

लक्ष्मण जानते हैं कि सीता ने उनके जाने से पूर्व क्रोध में आकर न जाने कितना बुरा-भला कहा, लेकिन अगर वह अब सामने आ जाएंगी तो निश्चय ही आंसुओं से अपने क्रोध का प्रभाव मिटाती हुई शान्ति और शालीनता की प्रतिमूर्ति हो जाएंगी। यह कैसा विरोधाभास है स्त्री के चरित्र

में, कोई नहीं जान पाता। परिणाम से पहले स्त्री परिणाम से ऊपर सोचने के लिए तैयार ही नहीं होती, यही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। एक विडंबना यह भी है कि यदि स्त्री परिणाम से पूर्व सोचने का दायित्व संभाल ले और उसी के अनुरूप आचरण करे तो उसकी कोमलता नष्ट हो जाएगी। तब वह स्त्री के मूल गुण से दूर हो जाएगी। सीता की भी यही बाध्यता रही।

लक्ष्मण ने जो विश्लेषण सीता का किया, वह उसे स्वीकार नहीं था।

नित्य वैमित्तिक कर्म करते हुए वाल्मीकि मुनि के आश्रम में वास करती हुई सीता उन्हीं दिनों की स्मृतियों के चक्र में भ्रमण करती हुई कई बार सत्य की खोज के लिए स्वयं से उलझी है, जूझी है अपने द्वन्द्व से, किन्तु परिणाम वही ढाक के तीन पात। उन्हें हर बार यातना सहने के लिए बाध्य होना पड़ा। आखिर स्त्री का अपना अस्तित्व क्यों नहीं है? वह द्वितीय कोटि का व्यक्तित्व बनकर रह जाती है। आखिर किस अधिकार से उन्हें राम ने निर्वासन दिया? रावण की लंका में उनका अपना दोष होते हुए भी राम और लक्ष्मण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो वे भी उसी प्रकार दोषी हैं। आखिर राम भी तो मायावी हरिण की माया के भुलावे में आ गए थे।

सीता के ही एक मन ने कहा राम की यह कमजोरी मेरे प्रति भावुक होने की थी, वे मेरी इच्छा को टाल नहीं सके। वे चाहते तो मुझे गलत बताकर टाल सकते थे।

यदि वे ही मेरी इच्छा को टाल देते तो इतना बड़ा अनिष्ट होने से बच जाता।

लेकिन यह अनिष्ट कहां है? मेरे माध्यम से ही तो रावण और उसके अनेक दुर्दान्त राक्षसों का विनाश हो सका।

लेकिन कैसा भयानक समय था! इधर मैं बिलकुल असहाय, अकेली दुष्ट राक्षसों के बीच में बेबस थी और उधर राम पर्णकुटी में मुझे न पाकर दीन-हीन और संताप से मोहित गोदावरी के तट पर मुझे पुकार रहे थे...

“सीता कहां है? क्या राक्षस रावण द्वारा हर ली गई? ऐ गोदावरी! क्या तू भी चुप रहेगी? वैदेही के बारे में मुझे कुछ नहीं बताएंगी?”

राम पर इस समय विक्षिप्तता हावी हो रही थी। वे लक्ष्मण से बोले—

“सौम्य! यह गोदावरी नदी तो मुझे कोई उत्तर ही नहीं देती। अब मैं राजा जनक के मिलने पर उन्हें क्या जवाब दूंगा? जानकी के बिना उसकी माता से मिलकर मैं उन्हें यह अप्रिय समाचार कैसे सुना पाऊंगा? मुझ राज्यहीन के साथ फल-फूल पर निर्वाह करने वाली वह जनक सुता अब कहां मिलेगी?”

लंबी सांस लेते हुए राम ने कहा—

“तुमने कितनी बड़ी भूल की लक्ष्मण! तुम सीता की प्रतिक्रिया को टाल नहीं सके? जबकि तुम जानते हो कि स्त्रियां कभी वस्तुनिष्ठ सोच ही नहीं सकतीं, वे सदैव व्यक्तिनिष्ठ होकर सोचती हैं। मैं भी कितना मूर्ख था, यह जानते हुए भी कि वह मृग सामान्य नहीं, एक विचित्र विशिष्टता लिये है, फिर भी उसकी माया को जान न सका और उसके पीछे चल दिया।

देखो, ये राक्षस के पैरों के निशान, ये टूटा धनुष, ये रथ के बिखरे हुए टुकड़े और देखो लक्ष्मण! ये घुंघरू, सीता के आभूषणों में लगे हुए ये घुंघरू।”

“अरे!” फिर चौंककर राम बोले, “यहां तो रक्त की बूंदें भी पड़ती हैं। ऐसा लगता है कि इस भूमि पर भयानक युद्ध हुआ है।”

आगे बढ़ने पर उन्हें सोने का कवच पड़ा मिला। एक छत्र मिला, जिसका दंड टूटा हुआ था। इधर-उधर भयानक बाण बिखरे पड़े थे।

राम की दशा लक्ष्मण के लिए असहनीय हो रही थी।

“रघुनंदन! आपको इस प्रकार विलाप नहीं करना चाहिए। शान्त होकर विचार करना चाहिए, सीता का अपहरण किसने किया है, उसी की खोज करनी चाहिए। आप और मैं धनुष बाण लेकर बड़बड़ा-बड़बड़ा ऋषियों की सहायता से उन्हें खोज सकते हैं। हम समुद्र में खोजेंगे, पर्वतों और वनों में उन्हें ढूँढ़ेंगे, सरोवर छान मारेंगे। देव, गन्धर्व और पाताललोक में भी तलाश करेंगे। हे कोशल नरेश! जब तक देवी सीता का पता हमें नहीं लग जाएगा, हम शान्त नहीं बैठेंगे। और फिर हे भैया! यदि आप इस दुख को धैर्यपूर्वक नहीं सहेंगे तो फिर साधारण पुरुष की क्या गति होगी?”

“लक्ष्मण! दुख पड़ने पर हर व्यक्ति साधारण हो जाता है। मैं भी इस समय एक पति की तरह सीता का वियोग सह रहा हूँ।”

“पर हे देव! शोक से समस्या का समाधान नहीं हो पाएगा।”

राम और लक्ष्मण दोनों को ही सीता के अकस्मात् इस प्रकार खो जाने का दुख था और इसी दुख में वे दोनों इधर-उधर भटकते हुए आगे बढ़ रहे थे।

अभी वे कुछ ही आगे बढ़ रहे थे कि उन्हें पक्षीराज जटायु दिखाई पड़ा।

पहले तो राम को लगा कि यह अवश्य ही जटायु के रूप में कोई मायावी राक्षस है, लेकिन बाद में उनकी यह दुर्दशा देखकर और समीप आकर उन्हें पहचाना तो कर यह विश्वास हो गया कि वे पक्षीराज जटायु ही हैं, जो उनके पिता के मित्र थे।

जटायु अर्ध मूर्च्छित थे, लेकिन राम की पदचाप से उन्होंने पहचान लिया और बोले—

“हे राम! इस दुर्जन वन में तुम जिसे औषधि के समान ढूँढ़ रहे हो, वह देवी सीता और मेरे प्राणों को रावण ने हर लिया है।”

“हे जटायुराज! रावण ने सीता को हर लिया है?”

“हां राम! तुम्हारे और लक्ष्मण के न रहने पर वह महाबली रावण आया और सीता को हरकर ले जाने लगा।”

“जब मैंने सीता की चीख-पुकार और विलाप सुना तो मैंने देखा कि अरे, यह तो जानकी हैं और यह दुष्ट राक्षस इन्हें हरकर ले जा रहा है तो मैंने उसके साथ युद्ध भी किया, किन्तु मेरी क्या

सामर्थ्य! मैं तो बूढ़□ हो गया हूं। जितना संघर्ष मैं कर सकता था, उतना किया। मैंने उस रावण का रथ तोड़□ दिया, छत्र गिरा दिया, रथ का सारथी मार दिया, घोड़□ घायल कर दिए। एक बार तो रावण को भी मूर्च्छित कर दिया, लेकिन तब तक मैं भी बहुत थक गया था। मेरे पास इतनी शक्ति नहीं थी कि मैं उड़□कर आपको सूचित कर सकता, न इतना समय था।”

चोंच के इशारे से जटायु ने दिखाया कि वह सामने रावण का सारथी मरा पड़□ है।

“लेकिन जब रावण को शीघ्र ही होश आ गया तो उसने सीता को एक ओर पटककर मेरे पंख काट दिए और विदेहकुमारी को लेकर आकाश में उड़□ गया।”

राम ने धनुष बाण छोड़□कर गिद्धराज जटायु को गले से लगा लिया।

जटायु में थोड़ा□ ही प्राण बाकी थे, फिर भी उन्होंने राम को यह बता दिया कि यह रावण महर्षि विश्रवा का पुत्र और कुबेर का सगा भाई है।

“और एक बात, जिस मुहूर्त में रावण सीता को ले गया है, वह ‘बिन्द’ था। इसमें खोया हुआ धन शीघ्र ही उसके स्वामी को मिल जाता है। अतः तुम अपने मन में खेद न करो। संग्राम में रावण का वध करके तुम सीता को पुनः प्राप्त कर लोगे।”

यह कहकर पक्षीराज जटायु ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

कितने अकेले पड़□ गए थे राम, इस घने वन में कहीं कोई आसरा नहीं था। इतना कष्ट तो उन्हें अयोध्या से वन आते समय भी अनुभव नहीं हुआ, जितना इस समय सीता के वियोग से हो रहा था क्योंकि एक राक्षस, जिसका कोई अता-पता नहीं, उससे युद्ध करके सीता को प्राप्त करना है, लेकिन उसकी शक्ति तक का ज्ञान नहीं।

सौभाग्य से वे एक ऐसी जगह पहुंचे, जहां उन्हें कबन्ध मिला। शक्ल से यह बड़□ भयावह था। न इसका मस्तक था, न गला, केवल घड़□ था। छाती में ही ललाट के नीचे एक आंख थी।

इस कबन्ध ने दोनों भाइयों को दो हाथों से पकड़□कर अपने हाथ फैलाकर लटका दिया। वह भूखा था, इससे पहले कि वह इनको अपना ग्रास बनाता, दोनों ने मिलकर उस दुष्ट की एक-एक भुजा काट दी। अब वह बिना हाथों के धरती पर गिरा तड़□पने लगा।

उसी के कहने पर राम ने उसका दाह-संस्कार किया, क्योंकि वह इस शरीर में एक ऋषि का शाप भोग रहा था और इन हाथों के कटने से वह उस शाप से मुक्त हो गया था। उसी ने राम को बताया कि वानर जाति के सुग्रीव बड़□ मनस्वी वीर हैं, वे आपकी सहायता करेंगे। वे स्वयं अपने बड़□ भाई बाली के अत्याचार से दुखी हैं।

आप यहां से शीघ्र ही सुग्रीव के पास जाएं और उससे मैत्री संबंध स्थापित करें।

सुग्रीव इच्छानुरूप शरीर धारण करने वाले, पराक्रमी और कृतज्ञ हैं और वे स्वयं भी अपने लिए एक सहायक ढूंढ□ रहे हैं। वे ऋक्षरजा के सुपुत्र हैं और बाली से भयभीत होकर ही पंपा सरोवर के निकट अपना निर्वासन काल बिता रहे हैं। हे राघव! जहां तक मैं समझता हूं, संसार में

शायद ही ऐसा कोई स्थान हो या वस्तु हो, जो सुग्रीव के लिए अज्ञात हो।

नदियों, पर्वतों, दुर्गम स्थानों, गिरि-कन्दराओं तक में खोजकर वे आपकी पत्नी का पता लगा लेंगे। अपने वानर दूतों को भेजकर रावण के घर से भी सीता को ढूँढ़ निकालेंगे। फिर चाहे आपकी पत्नी मेरू पर्वत के अग्रभाग में पहुंचाई गई हो या पाताल में रखी गई हो। सुग्रीव राक्षसों का वध करके भी उसका पता लगा देंगे।

कबन्ध के द्वारा राम को यह ज्ञात हो गया कि यदि सुग्रीव से मित्रता कर ली जाए तो निश्चय ही वे सीता का पता लगाने में सरलता से सफल हो सकेंगे। यही सोचकर वे दोनों भाई अपने मार्ग पर पंपा सरोवर की ओर चल दिए।

उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि उस वन में कोई उनकी अनन्य भक्ति में जीवन की अथक साधना लिये, उनका ध्यान करके तपस्या कर रही है, वह शबरी थी।

यही सिद्ध तपस्विनी राम को देखकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और बोली—

“हे प्रभु! आपके दर्शन करके ही मेरी तपस्या सिद्ध हो गई।” इसके बाद राम की सेवा करने के उपरान्त उस देवी ने प्राण त्याग दिए और यहां से ये लोग ऋष्यमूक पर्वत की दिशा में बढ़ गए।

कितनी दूरी थी सीता को पाने के बीच में? अब उन्हें सुग्रीव की खोज करनी थी।

राम-लक्ष्मण दोनों ही भाई उद्विग्न अपने मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे। ऋष्यमूक पर्वत की एक चोटी पर बैठे सुग्रीव अपने मित्र हनुमान, जाम्बवान और नल-नील के साथ अपनी चिंताओं में व्यस्त थे।

अचानक जब उन्होंने मार्ग में आते हुए इन दो युवकों को देखा तो वे डर गए। उन्हें बाली का भय था। शीघ्र ही उनके मन में यह ख्याल आया, अवश्य ही बाली ने उन्हें उसके वध के लिए भेजा है।

सुग्रीव को इस प्रकार चिंताग्रस्त देखकर महाबली हनुमान बोले—

“आप चिंता मत कीजिए श्रीमान! इस मलय पर्वत पर बाली का कोई भय नहीं है और यदि आपको इनसे भय लग रहा है तो मुझे आदेश दें, मैं अभी आपको वास्तविकता बताता हूँ। उनका परिचय लेकर आता हूँ।”

हनुमान महाबली थे ही, विद्वान भी थे। वे समझ गए कि ये अवश्य ही पुरुष वेश में कोई दिव्यात्मा हैं, फिर भी वे ब्राह्मणवेश में उनके सम्मुख गए और उन्होंने अनुभव किया कि महाराज सुग्रीव का संदेह निर्मूल था। ये तो स्वयं यहां के उदंड राक्षस से त्रस्त हैं।

तथा ये राम-लक्ष्मण अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र हैं और इनके साथ राम की पत्नी भी थीं, जिसे दुष्ट रावण हरकर ले गया है। ये तो स्वयं सुग्रीव से मिलकर, उनसे मित्रता करके सीता की खोज में उनकी सहायता लेना चाहते हैं।

सुग्रीव से भेंट होने पर राम को एक संतोष मिला कि चलो, इस वन में वे अकेले नहीं हैं। उन

जैसा दुखी आत्मा सुग्रीव भी है, जिसकी पत्नी और राज्य का अपहरण उसके भाई बाली ने किया है।

सुग्रीव को राम ने विश्वास दिलाया, “प्रियवर! अब तुम हमारे मित्र हो और अब तुम्हारा दुख हमारा दुख है। अतः हम भरोसा दिलाते हैं कि तुम्हारा यह कष्ट शीघ्र ही मिट जाएगा।”

राम जैसे मित्र को पाकर सुग्रीव भी धन्य हो गया।

अब राम के सामने सबसे पहला लक्ष्य यही था कि किसी भी प्रकार उपक्रम करके सुग्रीव को उसका राज्य वापस लौटाना और उसकी पत्नी को उसे सौंपना। वे जानते थे कि बाली बहुत उदंड है, इसलिए उसका वध आवश्यक है।

यही हुआ भी, राम के कहने पर सुग्रीव ने उसकी नगरी में जाकर बाली को ललकारते हुए युद्ध का निमंत्रण दिया और फिर दोनों में घमासान युद्ध हुआ।

अपने दिए आश्वासन के अनुसार राम को वृक्ष की आड़ में लेकर बाली को मारना था, लेकिन संकट यह हुआ कि दोनों ही भाई शक्ल से इतने समान थे कि राम उनकी पहचान ही नहीं कर पाए कि कौन बाली है और कौन सुग्रीव। सुग्रीव जब बाली की मार सहन नहीं कर सका तो भाग खड़ा हुआ।

अबकी बार राम ने उसके गले में पहचान के लिए अपनी माला डाल दी और बाली को एक ही बाण से मार डाला।

वादे के अनुसार बाली के मरने के बाद सुग्रीव किष्किन्धा के नरेश हो गए, लेकिन बाली-पुत्र अंगद को उन्होंने युवराज बनाकर परिवार की कटुता को भी आगे बढ़ाने से रोक दिया। सुग्रीव को उसकी पत्नी मिल गई।

एक लंबे समय के बाद राज्य और पत्नी-सुख में सुग्रीव कुछ समय के लिए इतना खो गया कि वह यही भूल गया कि उसे राम का कार्य भी सम्पन्न कराना है, लेकिन राम तो उदार थे। उन्होंने अपने अनुज लक्ष्मण को भेजकर वर्षा ऋतु बीतने पर यह स्मरण दिलाया कि—

“हे महाराज सुग्रीव! अब मार्ग साफ हो चुके हैं। आपका अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आ गया है।”

आदेश की देर थी, आज्ञाकारी सेवक सुग्रीव पूरी तरह से राम के कार्य में जुट गए। उनके लिए चारों दिशाओं में अपने वानर दूत भेजना कोई बड़ी बात नहीं थी। शीघ्र ही बड़ी-बड़ी वानर यूथपतियों को अपनी सेना सहित, दल-बल सहित किष्किन्धा बुला लिया गया। वानर तो शाखा-मृग होते हैं, पलक झपकते ही कूदते-फांदते किष्किन्धा में आ गए।

उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम चारों दिशाओं में खोज के लिए उन्हें भेजा गया और यह अवधि निश्चित कर दी कि एक मास के भीतर उन्हें सीता की खोज करके अपने कार्य का विवरण देने वापस लौटकर यहीं उपस्थित होना है।

अनुमान यह था कि रावण सीता को दक्षिण दिशा में लेकर गया है, इसलिए दक्षिण दिशा में खोज का कार्य अंगद के नेतृत्व में हनुमान को सौंपा गया और शायद राम को हनुमान की कुशल क्षमता पर विश्वास था। अतः उन्होंने अपनी मुद्रिका हनुमान को देते हुए कहा—

“प्रियवर! मुझे विश्वास है, सीता की खोज का श्रेय तुम्हारे ही हाथों होगा। अतः यदि तुम्हें कहीं जनकसुता मिलें तो पहचान के लिए इसे ले जाओ। सीता तुम्हारा विश्वास करेंगी और मेरा दूत जानकर तुम्हें अपना संदेश भी देंगी।”

कितना असीम सुख का वह क्षण था, जब चारों ओर से घिरी हुई सीता राक्षसों के जाल में फंसी बिना पानी की मछली की तरह जीवन और मृत्यु के बीच फडफडा रही थीं। उस समय राम का समाचार उनके लिए अमृत-सा हो गया। उन्हें कल्पना में भी यह विश्वास नहीं था कि वे इस राक्षस की कारा से मुक्त भी हो पाएंगी या नहीं।

उनके भाग्य में क्या लिखा है, यह वह कैसे जान पातीं। विवाह के बाद कुछ ही दिन तो राजमहल का सुख देखा था, फिर यह वनवास मिल गया। तेरह वर्ष वनवास की अवधि बीतते-बीतते वे स्वयं माया के चक्र में फंसकर इस संकट में उलझ गईं और दुष्ट दानव रावण ने छल से उन्हें हर लिया। यह हरण नियति ने किया, रावण तो मात्र माध्यम बना।

भाग्य में इतना समय घोर भयग्रस्त यातना का था, जो उन्होंने यहां रावण की कारा में बिताया।

शुरू में तो जब हनुमान के मुंह से सीता ने अपनी कथा सुनी कि किस प्रकार अयोध्यापति महाराज दशरथ के चारों पुत्र उत्पन्न हुए, बडबडाए, उनका एक साथ विवाह हुआ, रानी कैकेयी के वरदानस्वरूप राम को राज्याभिषेक की जगह वनवास हुआ और फिर एक दिन रावण ने सीता का अपहरण किया तो उन्हें लगा कि अवश्य ही यह कोई राक्षस रावण की मायावी चाल है, जो उन्हें राम की कथा का यह कर्णसुख देकर छलना चाहती है। फिर जब हनुमान ने वास्तविकता बताई तो वे आश्चर्यचकित रह गईं। उनके सामने श्रीराम की दी हुई वह मुद्रिका थी। अब तो संदेह के लिए कोई अवकाश ही नहीं था।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि पवन-पुत्र हनुमान एकमात्र ऐसे वीर थे, जो अपने बल पर सौ योजन लंबा यह समुद्र पार करके उन तक पहुंचे।

हनुमान को तो अपने इस बल का स्मरण भी नहीं था, क्योंकि बालपन में ही उनकी इस अलौकिक पराक्रमणशीलता को देखकर उनको इस बल को भूल जाने का शाप मिल चुका था, लेकिन वयोवृद्ध चिरवान जामवन्त के स्मरण दिलाने पर उन्हें यह याद आ गया कि वे तो महाबलशाली हैं। यह समुद्र तो क्या, वह इस पृथ्वी की परिक्रमा भी कर सकते हैं। तो फिर क्या था, ‘जय श्रीराम’ कहते हुए पलक झपकते ही हनुमान लंका के त्रिकूट पर्वत पर जा पहुंचे।

सीता भी जानती थीं कि राम उनके पास किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं भेजेंगे, जिसके पराक्रम और शील का उन्हें ज्ञान न हो। इसलिए हनुमान पर अविश्वास करने का उनके पास कोई आधार नहीं था।

पति के हाथ की उस मुद्रिका को ध्यान से देखते हुए सीता इतनी प्रसन्न हुई मानो कुछ क्षण के लिए उनके पति उनके सामने आ गए हों और उस कल्पना बिंदु में जो सुख उन्हें मिला, वह इस राक्षसपुरी में दुर्लभ था।

हनुमान ने सीता को आश्वस्त करते हुए कहा—

“हे देवी! श्रीराम को यह ज्ञात नहीं कि आप लंका में हैं और यह लंका समुद्र पार यहां इस त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई है। इसीलिए उन्होंने वानरराज सुग्रीव से मित्रता करके सबसे पहले आपकी खोज का कार्य पूरा किया है। आप इस बारे में लेशमात्र भी चिंता न करें। राम अब्धुत शक्ति के केन्द्र हैं, वे चाहें तो समुद्र पर अपने बाणों का पुल बनाकर इस लंकापुरी में पहुंच सकते हैं। आप कुछ ही समय में श्रीराम के दर्शन करेंगी।”

राम के बारे में यह सुनकर सीता की आंखों में आंसू आ गए और वे सोचने लगीं, ‘जब राम पर्णकुटी लौटे होंगे और मुझे नहीं पाया होगा तो कितना विलाप किया होगा उन्होंने।’

आज उन्हें इस लंका में आए दस माह बीत चुके हैं। अब दो मास का समय केवल शेष है, यदि राम ने इस अवधि के भीतर ही प्रयत्न करके मुझे रावण की कारा से मुक्त नहीं कराया तो निश्चय ही मेरा जीवन पूरा हो जाएगा। रावण के भाई विभीषण ने तो रावण को बहुत समझाने का प्रयास किया, लेकिन उस दुष्ट की बुद्धि पर तो कोई असर नहीं हुआ।’

सीता की यह विह्वलता देखकर हनुमान ने कहा—

“देवी! इतनी अधीर न होइए, धैर्य धारण कीजिए। राम अवश्य ही वानरों की सेना सहित यहां पहुंचकर रावण का वध करके आपको मुक्त कराएंगे या कहें तो मैं अभी आपको इस राक्षस की कारा से मुक्त करा सकता हूं। आप मेरी पीठ पर बैठ जाइए, मैं समुद्र लांघ जाऊंगा। मुझमें रावण सहित सारी लंका को ढो ले जाने की शक्ति है और आज ही आप श्रीराम के समीप पहुंच जाएंगी।”

“हनुमान! मैं तुम्हारी शक्ति पहचानती हूं, किन्तु हे वानर शिरोमणि! रावण तो मुझे बलपूर्वक मेरी अनिच्छा से उठाकर लाया, उस समय मैं निरुपाय थी, किन्तु एक सती पत्नी के लिए किसी पुरुष का स्पर्श पाप होता है। अतः मैं चाहकर भी तुम्हारे इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकती। तुम तो श्रीराम से मेरा यही निवेदन करना कि वे शीघ्र ही लंका पर चढ़ाई करके, दुष्ट रावण का वध करके मुझे उसकी कारा से मुक्त कराएं।

हां, तुमने यहां मुझे दर्शन देकर जितना प्रसन्न किया है, यह मेरा मन जानता है। अतः तुमने जो मुझे पहचान के रूप में यह मुद्रिका दी है, इसके बदले मैं तुम्हें यह चूड़ामणि दे रही हूं। यह तुम उन्हें सौंप देना और कहना कि स्वामी! देवी सीता ने कहा है कि जिसका यह कंठहार है, वह आपके लिए अत्यन्त व्याकुल है, उसे आपका सान्निध्य कब मिलेगा?

हनुमान! मैं तुम्हें एक प्रसंग और बताती हूं—चित्रकूट पर्वत पर मंदाकिनी नदी के समीप जब मैं तापस आश्रम में निवास करती थी, उस समय एक कौआ आकर बार-बार मुझ पर चोंच मार रहा

था। मैं उस पर क्रोधित थी। अतः अपने लहंगे को दृढ़तापूर्वक कसने के लिए कटिसूत्र को खींचने लगी, उस समय मेरा वस्त्र कुछ नीचे खिसक गया और उस अवस्था में आपने मुझे देख लिया। आपने मेरी हंसी उड़ाई, लेकिन कौए की हरकत कम नहीं हुई। कुछ देर बाद जब आप मेरी गोद में सिर रखकर सो रहे थे तो वह कौआ फिर आकर मेरे स्तन के ऊपरी भाग में चोंच मार गया, जिससे टपकी लहू की बूंद आपके कपोल पर पड़ी और लहू की गर्मी से आप जाग उठे और जब आपको यह ज्ञात हुआ कि यह हरकत दुष्ट कौए की है तो है नाथ! आपने कुश की चटाई से एक कुश निकालकर उसे ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर कौए की ओर फेंक दिया। उस कुश से बचने के लिए वह कौआ तीनों लोकों में घूम आया, लेकिन राम के ब्रह्मास्त्र से बचाव का कोई उपाय उसे कहीं नहीं मिला। किसी ने उसे शरण नहीं दी, अंत में वह स्वयं थककर राम की शरण में आया और आप उदारमना ने उसके प्राणों की रक्षा करते हुए उसकी दाहिनी आंख नष्ट कर दी।

यह प्रसंग कहते हुए हे हनुमान! तुम प्राणनाथ से कहना—एक साधारण अपराध करने वाले कौए पर भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने वाले राम! जो आपके पास से मुझे हर ले आया है, आप उसे कैसे दंडित नहीं कर रहे?

निस्संदेह मेरा ही कोई महान पाप मुझे उदित हुआ है, जिसके कारण त्रैलोक्य में सर्वोपरि वीर और सक्षम होने पर भी मुझ पर कृपादृष्टि नहीं हो रही है।”

यह कहते हुए सीता फिर रोने लगीं।

हनुमान ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा—

“देवी! आप अब निश्चित हो जाइए। राम के प्रयत्नों में सबसे बड़ी बाधा आपकी खोज की थी, जिसे मैंने उनके प्रताप से आपको पाकर हल कर लिया है। अब प्रतापी राम शीघ्र ही आपकी अवधि से पूर्व उस दुष्ट रावण का वध करके आपको कारा से मुक्त करा देंगे।”

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में आज सीता को आए हुए कई मास बीत चुके थे और अब वह दिन भी समीप आने को था, जब उनके अंक में पल रहा राम का अंश अब पृथ्वी पर पदार्पण करेगा।

यदि यह न होता तो वे यह वियोग का समय इस प्रकार न काटतीं। जब लक्ष्मण उन्हें राम के द्वारा निर्वासित किए जाने का आदेश लेकर भागीरथी के तट पर छोड़कर गए थे, वे तभी भागीरथी के जल में अपना यह शरीर समर्पित कर देतीं!

बिना पति के जीवन का कोई आधार नहीं होता, लेकिन अंक में पल रहा यह वीर तो निर्दोष था। अतः उसकी हत्या का दोष वे अपने सिर नहीं ले सकती थीं। पति न सही, पुत्र को तो वह अपनी ममता दे ही सकती हैं और फिर अयोध्या की राजमहिषी होने के कारण उनका दायित्व भी तो था कि वे अयोध्या के उत्तराधिकारी को जन्म दें।

और उन्होंने यह लंबा समय इसी एक अभिलाषा में काट दिया।

सीता ने बचपन में अपने पिता का भरपूर स्नेह पाया, उन्हीं के संरक्षण में वे पली-बढ़ीं और एक स्वप्न लेकर वे अयोध्या आई थीं कि यहां भी श्वसुर पिता की भरपूर सेवा करेंगी, लेकिन नियति का चक्र ऐसा उल्टा घूमा कि न सेवा ही कर पाई और न पिता ही रह पाए और यह चक्र एक बार फिर घूमा। निर्वासन की यंत्रणा सहते हुए ही सही, सीता को महर्षि वाल्मीकि के रूप में एक बार फिर पिता मिले।

इस आश्रम में पिता के वात्सल्य की छाया में वे जो आत्मसंबल पा सकी हैं, यदि महर्षि वाल्मीकि न मिलते तो वहां के हिंस पशु उनकी सारी आशा और आकांक्षा को अपने जबड़ों और नाखूनों से नोंचकर खा जाते।

विधाता कितना न्यायकारी है! संकटों में भी जीवन का कोई-न-कोई सूत्र अवश्य बना देता है—रावण की लंका में भयग्रस्त सीता अशोक वाटिका में अवधि को पास आते जानकर कितना संतुष्ट हो जाती थीं, किन्तु समय रहते ही वीर हनुमान ने आकर कितना बल दिया था उन्हें और एक आशा जगा दी थी कि अवधि समाप्त होने से पूर्व ही राम उन्हें इस कारा से मुक्त करा देंगे।

कितना बड़ा अंतर आ गया था इस आशा से। कहां तो वे यह सोचकर एक-एक दिन काट रही थीं कि हर बीतने वाला दिन उनके जीवन की समाप्ति की अवधि को कितना समीप ला रहा है और कहां हनुमान के आने के बाद और यह आश्वस्ति पा जाने के बाद कि श्रीराम अवधि से पूर्व ही मुक्त करा लेंगे, अब वह प्रत्येक पल इस आशा में काट रही थीं कि सुखद जीवन और इस कारागार के बीच हर क्षण कम हो रहे हैं।

एक दिन उन्होंने यह भी सुना कि श्रीराम समुद्र पर सेतु बनाकर लंका की भूमि पर आ चुके हैं। अब वे शीघ्र ही अपनी सेना सहित, जिसे उन्होंने वानरों की सहायता से संगठित किया है, रावण पर आक्रमण कर देंगे।

जब हनुमान लंका से लौटकर गए थे तो अपने द्वारा मचाए उत्पातों से उन्होंने एक बार तो सारी लंका को ही हिला दिया और रावण को यह स्पष्ट जता दिया कि-हे मूर्ख जिस राम को तू साधारण नर समझ रहा है, उसका एक दूत ही तेरी इस लंका को जलाने की क्षमता रखता है तो सोच राम के कोप का तुझ पर क्या प्रभाव पड़ेगा। तू उस विनाश की कल्पना भी नहीं कर सकता।

अतः जब लंका में दुबारा हलचल मची और चारों तरफ दहशत फैल गई कि वही वानर जो पहले लंका को जलाकर गया था, फिर आ गया है तो अशोक वाटिका में राम के विचारों में मग्न सीता अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं।

यह तो उन्हें बाद में ज्ञात हुआ कि यह हनुमान नहीं, बल्कि किष्किन्धा का युवराज और बाली का पुत्र अंगद था जिसने रावण के दरबार में उसे यह कहकर चुनौती दी, “हे रावण! या तो सीता को आगे करके अपनी रानियों सहित हाथ जोड़कर, नंगे पैर चलते हुए श्रीराम के सामने जाकर उनके चरणों में सिर नवाकर अपने अपराध की क्षमा मांग ले। राम उदार हैं, तुम्हें क्षमा कर देंगे, वरना तुम्हारी लंका अब बहुत दिन तुम्हारी नहीं रह पाएगी।”

कितना दुष्ट था यह रावण! जिसने सत्परामर्श देने वाले अपने भाई को भी इस अहंकार में कि मेरा कोई क्या बिगाड सकता है, अपमानित करके राजदरबार से निकाल दिया।

विभीषण तो थे ही रामभक्त। उन्होंने भी राम के चरणों में शरण ली थी, लेकिन इस दुष्ट रावण को बुद्धि नहीं आई कि मैं अपने अहंकार को त्यागकर, वस्तुस्थिति को समझते हुए समर्पण कर दूं।

युद्ध अवश्यम्भावी हो गया।

अंगद की वापसी के बाद सीता प्रतिफल का बिगुल सुनने के लिए आतुर हो उठी, क्योंकि अब तो दोनों ही शक्तियां आमने-सामने थीं। राम अपनी पूरी सेना सहित लंका के परकोटे से बाहर अपना डेरा जमाए हुए थे। चारों ओर से उत्तर, पश्चिम, पूर्व, दक्षिण, चारों द्वारों पर उनकी वानर सेना कुशल सेनापति के नेतृत्व में आक्रमण के प्रारम्भ करने के आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी।

सीता के लिए अब वह समय आ गया, जब उन्हें राम के अंश को जन्म देना था। वे प्रसव-पीडना अनुभव कर रही थीं। एक यह भी प्रसव पीडना है, जब उन्हें अयोध्या के उत्तराधिकारी को जन्म देना है और एक वह भी प्रसव पीडना थी, जब राम की सेना को द्वार तोड़कर लंका में प्रवेश पाना था। एक युद्ध की शुरुआत का क्षण था और दूसरा नौ मास के पश्चात् निर्मित को प्रस्तुत करने का क्षण था।

आश्रम के बाहर महर्षि वाल्मीकि माथे पर पसीने की बूंदें लिये आ-जा रहे थे। भीतर महर्षि की पत्नी और कुशल प्रसव क्रिया कराने वाली दाई अपने कार्य में संलग्न थी और सीता इस समय भी जीवन-मरण के बीच हिचकोले खा रही थीं।

कुछ क्षण का अन्तराल और फिर एक रुदन का स्वर।

सीता ने एक बालक को जन्म दिया, किन्तु उनके माथे का पसीना अभी नहीं सूखा था। वे अभी भी भयानक पीडना से ग्रस्त थीं। उनके दुखों का पूरा अंत अभी नहीं हुआ था, वह छटपटा रही थीं मानो मृत्यु उनके द्वार पर दस्तक दे रही थी, लेकिन भीतर से उनका आत्मबल उनकी जिजीविषा को थामे हुए था। वे अभी भी जीवन-मृत्यु के बीच संघर्ष कर रही थीं। कुछ देर बार फिर से उनकी बेचैनी बढ़ी, फिर से हाथ-पांव निष्क्रिय हुए, फिर से जबड़ना कसा, एक बार फिर शरीर ऐंठा मानो जीवन-संग्राम के बाद एक रुदन का दूसरा स्वर उभरा और इसके बाद सीता शान्त हो गई मानो उन्होंने बहुत बड़ना वेदना से मुक्ति पा ली। इस मुक्ति के साथ-साथ अतीत के चित्रों में भ्रमण करती सीता ने वह युद्ध का बिगुल भी सुना—उन्हें लगा राम ने लंका पर आक्रमण कर दिया और उनकी मुक्ति का शंख बज गया।

सीता की अग्नि-परीक्षा

राम ने रावण की लंका पर अपनी वानर सेना सहित आक्रमण कर दिया। हनुमान, सुग्रीव, नल, नील, अंगद, सुषेण, महाराज केसरी आदि बड-बड दिग्गज रणबांकुरे वानर और भील अपने हाथों में बड-बड वृक्ष तथा चट्टानें उठाए राक्षसों पर वार करने लगे।

राक्षस अपने हथियारों बरछी, भालों और तलवारों से लड रहे थे तथा वानर उन पर पाषाण से प्रहार कर रहे थे। हनुमान, सुग्रीव अपनी गदा से अनेक राक्षस महावीरों का संहार कर रहे थे। द्वन्द्व युद्ध में राक्षस पराजित हुए।

एक स्थिति तो वह आई, जब श्रीराम और लक्ष्मण को इन्द्रजीत मेघनाद ने नागपाश में बांध लिया। जामवन्त इनकी सेना में बड अनुभवी और सहनशील योद्धा थे। अतः वे जानते थे कि यह संकट कुछ ही पल का है, लेकिन रावण के लिए यह समय बड लाभकारी था।

नागपाश में बंधे राम और लक्ष्मण अचेत पड थे, जबकि रावण इस अवसर का पूरा लाभ उठाना चाहता था। अतः उसने त्रिजटा और अन्य राक्षसियों को आदेश दिया कि वे शीघ्र ही पुष्पक विमान पर सीता को चढाकर रणभूमि में मारे गए उनके पति और देवर के दर्शन करा दें। तब सीता की वह आशा भी समाप्त हो जाएगी, जिसके भरोसे वह अभी तक यह सोचे बैठी है कि राम आएंगे और उसे अवश्य एक दिन मुक्त करा लेंगे।

इन्हें मृत देखकर निश्चय ही सीता को स्वयं मेरे पास आना होगा।

यह सोचकर रावण मन-ही-मन प्रसन्न हुआ कि उसके पुत्र इन्द्रजीत ने उसके शत्रुओं को मारकर उसका संकट सदा-सदा के लिए दूर कर दिया है।

पुष्पक विमान पर बैठी सीता ने देखा कि अचेत राम और लक्ष्मण के पास वानरगण अत्यन्त व्याकुल और विकल अवस्था में दिखाई पड रहे हैं। सीता के लिए यह बहुत अप्रत्याशित और दुखदायी समाचार था।

अपने स्वामी और देवर को इस प्रकार अचेत और असहाय भूमि पर पड देख वह कोमल भाव वाली नारी बिलख उठी और करुण क्रन्दन करती हुई विलाप करने लगी। उसके सामने सारा ज्योतिष सिद्धान्त असफल हो गया था। जिन ब्राह्मणों ने उसे यह बताया था कि उसके पति के साथ उसका राज्याभिषेक होगा, ये बातें उसे झूठी लगने लगी थीं।

विलाप करते हुए सीता सोच रही थीं—जिन्होंने सारे जनस्थान को मेरे लिए छान मारा, समुद्र पर पुल बांधकर वानर सेना सहित रावण को पराजित करने के लिए यहां तक आ गए ये दोनों बंधु, सभी दिव्यास्त्रों के ज्ञाता थे। फिर यह सब कुछ कैसे हो गया? क्या विधाता मेरे बिलकुल प्रतिकूल है?

रावण ने सीता की रक्षा के लिए जिन राक्षसियों को यह दायित्व सौंपा था, उनमें त्रिजटा वास्तव

में एक देवी के समान थी। त्रिजटा ने सीता को सदैव पुत्री के समान स्नेह दिया, वही अब उनके साथ थी।

सीता को इस प्रकार बिलखता हुआ देख त्रिजटा से नहीं रहा गया और वह बोली—

“विषाद न कर पुत्री! तुम्हारे पतिदेव अचेत हैं और कुछ ही क्षणों में फिर से स्वस्थ हो जाएंगे।

तुम नहीं जानतीं, जिस विमान पर तुम विराजमान हो, यह दिव्य विमान है। यदि राम और लक्ष्मण प्राणहीन हो गए होते तो यह तुम्हें धारण न करता।

और तुम देख रही हो कि किस प्रकार सेना में एक प्रयत्नशीलता झलक रही है। ये लोग राम की चेतना को वापस लौटा लाने के लिए प्रयासरत हैं।

हे सीता! तुम्हारा शील स्वभाव और निर्मल चरित्र मेरे मन में घर कर गया है। अतएव न मैंने पहले कभी तुमसे झूठ बोला और न आज बोलूंगी। मेरा इष्ट जानता है कि मैंने तुम्हें पुत्री के समान समझा है और फिर राम तो अविनश्वर हैं वे रावण के हाथों नहीं मारे जाएंगे, बल्कि विधाता ने तो रावण की मृत्यु के लिए ही राम को धरती पर भेजा है। ये ही सामान्य प्राणियों के त्रासहर्ता हैं। तुम दुख त्याग दो पुत्री!” और तब त्रिजटा के अंक से लगकर सीता ने कितना सुख अनुभव किया था मानो बहुत दिनों बाद उन्हें अपनी मां मिल गई हो और अभी सीता पुष्पक विमान से लौटकर वाटिका में अपने नियत स्थान पर आ भी नहीं पाई कि समस्त राक्षसों के चेहरे पर फिर से आतंक छा गया तथा यह समाचार जंगल में लगी आग की तरह फैल गया कि राम और लक्ष्मण फिर से स्वस्थ हो गए हैं और युद्ध के लिए रावण को ललकार रहे हैं।

उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि महात्मा गरुड□ स्वयं बड़□ जोर के वेग से युद्धभूमि में प्रस्तुत हुए और उन्हें देखते ही वे महाबली नाग, जिन्होंने बाणों के रूप में राम और लक्ष्मण को बांध रखा था, वहां से भाग खड□ हुए। महात्मा गरुड□ का स्पर्श पाते ही राम और लक्ष्मण के सारे घाव भर गए तथा वे पुनः पूर्वबल से युक्त हो गए।

यह समाचार सुनकर सीता के चेहरे पर दिव्य खुशी झलक आई और उनका त्रिजटा पर विश्वास और अधिक दृढ□ हो गया।

फिर तो वानर सेना में एक अप्रत्याशित जोश भर गया और उन्होंने रावण की सेना के वीरों को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया।

अकंपन मरा, प्रहस्त मरा, नरातक और देवातंक मारे गए, रावण का भाई कुम्भकर्ण, जो भयानक वीर था, वह भी मारा गया। यहां तक कि आतिकेय, महोदर और महापार्श्व भी मारे गए। अब रावण की सेना में वीरों के नाम पर केवल एक वीर बचा रह गया, रावण का ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजीत।

इन्द्रजीत मायावी था। अतः उसने मायायुद्ध से वानरों की सेना को ध्वस्त करना आरम्भ कर दिया। एक बार तो उसने अपने चाचा विभीषण पर भी वार किया, लेकिन लक्ष्मण ने उसको भी निरस्त्र कर दिया।

राम की शक्ति को समाप्त करने के ख्याल से मेघनाद ने लक्ष्मण पर महाशक्ति का प्रहार किया। लक्ष्मण उसकी माया को न समझ सके और शक्ति के शिकार हो गए।

सीता को त्रिजटा के द्वारा ही यह समाचार ज्ञात हुआ कि महाबली हनुमान, जाम्बवान के आदेश से लक्ष्मण के उपचार के लिए दिव्य औषधियों का पर्वत ही उठा लाए। यह काम केवल हनुमान ही कर सकते थे।

मन-ही-मन सीता ने हनुमान को आशीर्वाद दिया और प्रभुकृपा से संजीवनी औषधि के प्रताप से शीघ्र ही लक्ष्मण चैतन्य हो गए।

यद्यपि लक्ष्मण की अचेत अवस्था में राम की आंखों के सामने अंधकार छा गया था, उनको जीवन निस्सार लगने लगा था। लक्ष्मण को खोकर यदि उन्हें सीता मिल भी जाए तो क्या सुख पा सकते हैं। उनकी चिंता का विषय यही था कि वे माता कौशल्या को, सुमित्रा को और विशेषकर उर्मिला को क्या उत्तर देंगे।

माता कौशल्या ने तो चलते समय विशेषकर यह कहा था कि चौदह वर्ष बाद भी इसी तरह लौटना वत्स! सीता और लक्ष्मण के साथ अर्थात् इसके पीछे शायद उनका यही अभिप्राय था कि लक्ष्मण के बिना यह अयोध्या तुम्हें नहीं स्वीकार करेगी।

लक्ष्मण की मूर्च्छा की स्थिति में राम यही सोचकर विलाप कर रहे थे कि जिस भाई ने उनके संकटों में इतना साथ दिया, उसकी अनुपस्थिति में अर्थात् उसके बिना वे राज्य भी लेकर क्या करेंगे और राज्य ही क्या, उनके लिए तो जीवन भी निस्सार हो जाएगा।

लेकिन सौभाग्य से ऐसा कुछ नहीं हुआ। सीता के चेहरे पर एक दिव्य प्रसन्नता छा रही थी। लक्ष्मण चेतना पा चुके थे और फिर से मेघनाद को युद्ध के लिए ललकारने लगे थे।

मेघनाद तो मायावी था ही, अबकी बार वह स्वयं को और अधिक शक्तिसंपन्न करने के लिए निकुम्भिला के मंदिर में जाकर पूजा करने लगा।

उसने तो राम और लक्ष्मण को भ्रमित करने के लिए सीता की मायावी प्रतिमा का वध करके राम और लक्ष्मण के सामने मृत दिखा दिया, ताकि ये दोनों भाई युद्ध से उपराम होकर अपनी पराजय स्वीकार करके, हथियार डालकर निराश लंका से लौट जाएं, लेकिन यहां भी यह मायावी सफल नहीं हुआ, क्योंकि विभीषण इन राक्षसों की माया को जानते थे, अतः उन्होंने बताया, “जिस सीता को आपने मेघनाद के हाथों मारी जाती हुई देखा है, हे राम! वह सीता नहीं, बल्कि एक मायावी जानकी बनाई गई थी आपको भ्रमित करने के लिए, ताकि आप उसके विलाप में यह रात्रि गुजार दें और वह अवसर का लाभ उठाकर निकुम्भिला मंदिर में जाकर पूजा का विधान पूरा कर लें।

विषाद छोड़िए राम! और लक्ष्मण को इन्द्रजीत के वध के लिए निकुम्भिला मंदिर की ओर भेजिए। यदि उसका होम पूरा हो गया तो फिर उसे संग्राम में परास्त करना इन्द्रादि देव के लिए भी कठिन होगा।

त्रिजटा ने ही यह सुखद समाचार सीता को दिया कि—

“हे देवी! अब तुम प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारी मुक्ति और श्रीराम के बीच अब केवल मात्र एक दुर्दान्त राक्षस रावण ही बचा रह गया है।”

आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता में सीता ने चौंककर त्रिजटा से कहा—

“क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मेरे वीर देवर लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को मार डाला है?”

“हां देवी! तुम्हारे वीर देवर ने इन्द्रजीत को मार डाला है। उसका धड़ युद्धभूमि में पड़ा है और अब रावण अकेला रह गया है।”

एक लंबी सांस भरते हुए सीता ने मन में विचार किया...पाप का अंत निश्चित ही होता है।

वाह दुरात्मा रावण! तूने अपनी दुर्भावनाओं को पूरा करने के लिए कितना बड़ा अनिष्ट आमंत्रित किया। समूचे राक्षस वंश को मृत्यु के द्वार पर धकेल दिया। हे नीच राक्षस, तूने तो देवता समान भाई का भी अपमान किया। कुबेर का अपमान तो तू पहले ही कर चुका था, तूने तो विभीषण का भी घोर अपमान किया। उसकी आस्था और भक्ति को खंडित करना चाहा। आस्था, भक्ति, विश्वास कभी किसी के खंडित करने से खंडित नहीं होते। विभीषण का विश्वास राम में था तो देख तेरे ही कारण वह उनकी शरण में गया।

रावण के लिए मेघनाद के वध का समाचार निश्चय ही उसकी कमर को तोड़ने के समान था। अब वह भयानक क्रूरता पर उतर आया और यह निश्चय कर लिया कि वह सीता को जीवित नहीं छोड़ेगा। उसकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं और वह बोला—

“मेघनाद ने तो मायावी सीता का वध किया था, मैं उस वास्तविक सीता को ही अब जीवित नहीं छोड़ूंगा।”

यह विचार करते ही वह अपनी तलवार लेकर कुपित होता हुआ सीता का वध करने के लिए अशोक वाटिका पहुंच गया।

सीता राक्षसियों के बीच अपनी मुक्ति के क्षण की तीव्रता से प्रतीक्षा कर रही थीं और इस समाचार के लिए आतुर थीं कि कब रावण मारा जाएगा ?

लेकिन अकस्मात् जब उसने रावण को अपनी ओर आते देखा तो वे पश्चाताप करने लगीं। उन्हें लगा कि यह दुर्बुद्धि राक्षस जिस तरह कुपित होकर उनकी ओर दौड़ा आ रहा है, जान पड़ता है कि वह मुझ सनाथा को आज अनाथ की तरह मार डालेगा। वे क्षणभर के लिए सोचने लगीं...इससे तो अच्छा था कि मैं हनुमान की बात मानकर उसी समय उनकी पीठ पर बैठकर अपने पति के पास चली जाती।

मेरी सास देवी कौशल्या एक ही बेटे की मां हैं। यदि वे युद्ध में अपने पुत्र के विनाश का समाचार सुनेंगी तो उनके मन पर क्या बीतेगी? वे तो पहले ही पतिविहीना हैं। यह सुनकर तो निश्चय ही पुत्र-वियोग में सरयू में विसर्जन कर जाएंगी और इस समय सीता को रावण पर यह

क्रोध देखकर वह दुष्ट मंथरा याद आ गई, जिसके कारण यह सारा कुचक्र फलीभूत हुआ।

इधर सीता रावण के क्रोध से डर रही थीं कि आज यह दुष्ट अवश्य ही मुझे मारने के विचार से आया है और जैसे ही रावण ने म्यान से तलवार निकालकर सीता की ओर उसकी गर्दन धड़ से अलग करने के लिए ऊपर उठाई, रावण के विद्वान मंत्री सुपाशर्व ने तत्काल उसे रोकते हुए कहा—

“ठहरिए महाराज! आप तो साक्षात् कुबेर के छोटे भाई हैं। आप क्रोध में इस संकट के समय धर्म का त्याग क्यों कर रहे हैं? हे राक्षसराज! आपने तो पूर्ण रूप से विधिवत् ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेद-विद्या का अध्ययन किया है और जीवनपर्यन्त अपने कर्तव्य-पालन में लगे रहे। आज आवेश में आकर एक अबला स्त्री का वध करना आपको शोभा नहीं देता। हे पृथ्वीनाथ! आप तो अजेय हैं। संसार में आपके बल के सामने कौन टिक सकता है तो फिर आप अपना यह क्रोध युद्ध में राम पर क्यों नहीं उतार रहे?”

रावण को सही दिशा दर्शाते हुए सुपाशर्व ने कहा—

“हे शूरवीर शिरोमणि! राम का वध करके तो आप सीता को वैसे ही प्राप्त कर लेंगे।”

सुपाशर्व के वचनों से रावण की बुद्धि फिर गई। उसने अपनी तलवार म्यान में रख ली।

यह देखकर सीता को संतोष हुआ। रावण लौट गया था। अब उसका लक्ष्य राम थे।

सीता की आंखों के सामने यकायक क्रोधी रावण की तलवार देखकर जो अंधेरा छा गया था, वह छंटने लगा था।

काल का अतिक्रमण कौन कर सकता था, आखिर रावण को अपने द्वारा किए गए समस्त अहंकारजन्य पापों का प्रायश्चित् भी तो करना था।

प्रातःकाल होते ही रावण कमर कसकर राम के सम्मुख अपनी सेना के साथ आ गया। यह अमावस्या थी। यह रात्रि घनघोर अंधेरी होती है। आज यह अंधेरा किस पक्ष को निगलेगा? यह निश्चित नहीं था, पर दोनों ही पक्षों से भीषण बाण-वर्षा होने लगी।

पूरा दिन युद्ध में बीत गया। संध्या होते-होते क्रुद्ध रावण ने लक्ष्मण को अपने लक्ष्य की सीमा में लेकर अमोघ शक्ति बाण छोड़ दिया।

लक्ष्मण फिर अचेत हो गए और रावण प्रसन्न मन वानरों का नाश करता रहा।

राम ने जब यह देखा कि लक्ष्मण को शक्तिबाण लग गया है और वह अचेत होकर धरती पर गिर पड़ा है तो उन्होंने अपना क्रोध रावण की सेना पर उतारना प्रारम्भ कर दिया और ऐसा लगा मानो प्रलयकाल में प्रज्वलित अग्नि रोष से उदीप्त हो उठी है और ‘यह विषाद का समय नहीं है’ यह सोचकर राम रावण के वध का निश्चय करके अपनी सारी शक्ति से भयानक युद्ध करने लगे। उनकी आंखों के सामने लक्ष्मण का लहुलुहान शरीर घूम रहा था।

फिर कुछ देर बाद राम ने प्रयत्न करके अपने दोनों हाथों से लक्ष्मण के शरीर से उस शक्तिबाण

को निकाला और तोड़ डाला और क्रोध में यह विचारकर 'अब इस पापात्मा रावण को मार डाला जाए।' उन्होंने अपने तीखे बाणों से रावण को बेधना प्रारम्भ कर दिया।

राम के बाणों की वर्षा को रावण सह न सका और भाग खड़ा हुआ।

जामवन्त ने एक बार फिर हनुमान से कहा—

“वीरवर! जाओ और उन्हीं औषधियों को एक बार फिर लेकर आओ। उन्हीं से लक्ष्मण के जीवन की रक्षा होगी।”

पलक झपकते ही हनुमान महोदर पर्वत पर पहुंच गए और दिव्य औषधियों को उस पर्वत सहित उखाड़ लाए, जिस पर वे लगी हुई थीं।

वैद्य सुषेण ने लक्ष्मण की चिकित्सा की और लक्ष्मण एक बार फिर चैतन्य हो गए। अब राम के सामने यही लक्ष्य था कि जैसे भी हो और जितना दिन बचा है, रावण को मारकर इस युद्ध को समाप्त किया जाए।

स्वयं इन्द्र ने उनके लिए अपना दिव्य रथ भेजा और अब वे उस रथ पर विराजमान हो रावण के साथ अंतिम युद्ध के लिए भिड़ गए।

त्रिजटा ने ही सीता को यह समाचार दिया—

“हे रानी! राक्षस शिरोमणि रावण, महाराज राम के हाथों वीरगति को प्राप्त हो गया है।”

हर्षोल्लास के साथ सीता ने जब सुना कि दुष्ट रावण मारा गया है तो वे प्रसन्नता से खिल उठीं।

अब उनके स्वामी और उनके बीच में केवल एक औपचारिकता शेष रह गई थी।

अब वह उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगीं, जब स्वयं राम चलकर आएंगे अथवा हनुमान के द्वारा उन्हें बुलवाएंगे।

अपने आंगन में खेलते हुए दोनों बच्चों—कुश और लव की ओर निहारती सीता सोच रही थीं—

“कितनी यात्रा तय कर आई हैं वह। कितनी आशाएं उनके सामने थीं कि उन्हें राम उसी उत्साह के साथ अपनाएंगे और उनका वह जीवन जो स्वर्ण मृग के चर्म के लिए श्रीराम को भेजने से पहले था, वही फिर लौट आएगा लेकिन उनकी सारी आशाओं पर उस समय तुषारापात हो गया, जब विधिवत् स्नान ध्यान से सुसज्जित सीता राम के सम्मुख गईं और उन्होंने उन्हें अपनाने से इनकार करते हुए कहा—

भद्रे! मैंने युद्ध में शत्रु को पराजित करके तुम्हें उसकी कारा से मुक्त करा दिया है। मुझ पर जो कलंक लगा था, उसका मैंने प्रक्षालन कर दिया है। कलंक और शत्रु दोनों को ही एक साथ नष्ट कर दिया है लेकिन मैंने यह तुम्हें पाने के लिए नहीं, इस कलंक का प्रक्षालन करने के लिए ही किया था। तुम्हारे चरित्र पर संदेह किया जा सकता है, इसीलिए तुम आज यहां खड़ा हुई मेरी आंखों में खटक रही हो।

हे जनक दुलारी! तुम जहां इच्छा हो, चली जाओ। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरे घर में रही हुई स्त्री को केवल यह सोचकर कि कभी वह उसकी प्राणप्रिया रही है, मन से स्वीकार कर सकेगा? फिर तुम्हें तो रावण अपनी गोद में उठाकर ले गया था। तुम पर अपनी कुत्सित दृष्टि भी डाल चुका है। ऐसे मैं तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूं।

अतः हे सीते! मैंने जिस उद्देश्य से रावण के साथ युद्ध किया था, तुम्हारी मुक्ति के साथ और उसके मरण के साथ मेरा वह उद्देश्य पूरा हो गया है। अब यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम कहां जाओगी? क्योंकि मैं तुम्हें अब स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी ओर से तुम बिलकुल स्वतंत्र हो।

मैंने तुम्हें बहुत सोचने और समझने के बाद ही यह कहा है सीते! अब तुम चाहो तो भरत या लक्ष्मण किसी के साथ भी रहकर अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सकती हो। अब यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर करता है कि तुम शत्रुघ्न, वानरराज सुग्रीव अथवा राक्षसराज विभीषण के पास भी रह सकती हो, क्योंकि तुम जैसी दिव्यरूपा नारी को अपने घर में स्थित देखकर रावण चिरकाल तक तुमसे दूर नहीं रह सका होगा।”

सीता के लिए राम का यह व्यवहार बिलकुल अप्रत्याशित था। एक प्रकार से वे आकाश से धरातल पर आ गिरी थीं। उन्होंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि राम उनके बारे में ऐसा सोच भी सकते हैं, लेकिन अब इस समय इस उपस्थित जनसमूह के सामने वे कह रहे हैं तो क्या सत्य ही श्रीराम ऐसा मानते हैं। आश्चर्यचकित सीता की आंखों में आंसू आ गए।

कितनी कठोर बात उन्होंने इस समय उपस्थित जनसमुदाय के सामने कही।

आंखों में आश्रु लिये सीता ने कहा—

“हे श्रीराम! जिस तरह आपने ये कठोर शब्द मेरे लिए कहे हैं, ऐसा तो कोई निम्न कोटि का व्यक्ति, निम्न कोटि की स्त्री से ही कहता है, क्या आप मुझे ऐसा ही समझते हैं? यदि आपके मन में यही सब कुछ था तो फिर जब हनुमान को मेरी खोज के लिए भेजा था, उसी समय आपने मुझे क्यों नहीं त्याग दिया। कम-से-कम मैं आपके मुख से ये कठोर शब्द सुनने से पहले अपने आप को त्याग देती।

मैं पृथ्वी पुत्री हूं, साधारण मानव जाति से अलग हूं राम! इसीलिए मेरा आचरण भी अलौकिक और दिव्य है। आपने मेरी इन विशेषताओं को सामने नहीं रखा। मेरे शील, मेरी भक्ति को एक साथ भुला दिया?”

भरे गले से ग्लानि का अनुभव करते हुए सीता ने लक्ष्मण से कहा—

“हे सौमित्र! अब मेरे जीवन में कोई अभिलाषा, आकांक्षा नहीं है। मैं कलंकित होकर अब जीवित नहीं रह सकती, तुम मेरे लिए चिता तैयार करो।”

जिस स्त्री का पति, उसका पूज्य देव, आराध्य उसे त्याग दे और भरी सभा में उसका इस तरह

चरित्र को लेकर अपमान करे तथा निस्पृह होकर उसका परित्याग करे तो ऐसी दशा में कोई भी सम्मान रखने वाली स्त्री आत्मदाह ही कर सकती है, जीवित नहीं रह सकती।

और फिर राम को संबोधित करते हुए सीता ने कहा—

“हे नाथ! मैं अग्नि को साक्षी करके कहती हूँ कि मैं मन, वचन, कर्म से आपकी ही रही। बलात् रावण मुझे हरकर अवश्य ले गया लेकिन वह मेरा स्पर्श नहीं कर सका, मेरा स्नेह पाने का तो प्रश्न ही नहीं था। आप रावण के यहां मेरे वास पर लांछन लगाकर मेरा परित्याग कर सकते हैं, लेकिन क्या यह परामर्श मुझे नहीं दीजिएगा कि मैं अपना जीवन कहां बिताऊँ? कृपया अपने से अलग करते हुए किसी अन्य के साथ मेरा नाम जोड़कर मुझे अपमानित न करें।”

आपने मुझे त्याग दिया, मुझे इसका लेशमात्र भी क्लेश नहीं है, क्योंकि आप राजा हैं और आपके लिए राज्यमर्यादा भी एक प्रश्न है, किन्तु अपने जीवन का अन्त करते समय भी यह क्लेश मेरे साथ जाएगा कि आपने मन से मेरा अविश्वास किया। मुझे लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण के साथ रहने का परामर्श दिया। आप इतने कठोर होंगे, मुझे आशा भी नहीं थी।”

लक्ष्मण ने दुखी मन से सीता का आदेश-पालन करते हुए चिता तो तैयार कर दी, लेकिन सीता का यह जो अपमान हुआ उसे देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुखी हुए।

यद्यपि स्वयं हरण की स्थितियां सीता द्वारा ही बनाई गई थीं और जब सीता सेवाभावी भक्त और पुजारी लक्ष्मण के प्रति कठोर विचार रखते हुए उन्हें अपनी ओर आकृष्ट होने का दोष लगा सकती हैं तो वह तो स्वयं रावण के यहां रही हैं तो राम ने दोष लगा दिया तो कुछ भी गलत नहीं किया, लेकिन लक्ष्मण के मन में यह भाव बिलकुल नहीं आया। वे सीता को अब भी देवी, सती और पूज्या ही मानते थे।

जैसे ही सीता ने दूर से राम को प्रणाम करके लक्ष्मण के पास ठिठकते हुए यह कहा—

“अच्छा भैया लक्ष्मण! भूल से यदि तुम्हारे प्रति कोई अप्रिय शब्द कहा हो तो क्षमा कर देना। अब तुम्हारी यह भाभी अन्तिम विदा लेती है।”

लक्ष्मण ने जब यह सुना तो उनकी आंखों से टप-टप आंसू बहने लगे।

क्या विचित्र दृश्य था, राम के प्रति क्रोध में भरे लक्ष्मण के नेत्र लाल थे और अग्नि की ओर बढ़ती अपनी पूज्या भाभी को देखकर वे द्रवित भी हो रहे थे। कितनी विरोधी स्थितियां थीं।

फिर समूचे समुदाय को प्रणाम करती हुई रामप्रिया सीता उस प्रज्वलित अग्नि की परिक्रमा करने के बाद अग्नि को प्रणाम करते हुए बोलीं—

“हे अग्निदेव! यदि मेरा हृदय एक क्षण के लिए भी श्रीराम से दूर न हुआ हो यदि मेरा चरित्र शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक हो; यदि मैंने मन, वचन, कर्म से अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया है तो हे अग्निदेव! मेरी रक्षा करना। आप ही जगत् के साक्षी हैं।”

यह कहते हुए सीता उस जलती हुई अग्नि में कूद पड़ीं।

सीता के अग्नि में कूदते ही उपस्थित जनसमुदाय में रौद्र क्रन्दन मच गया। सब लोग सीता को आग में गिरते देखकर रो पड़ और चारों ओर आर्तनाद गूँज उठा। ऐसा लगा मानो आकाश के देवता राम से कह रहे हों—

“हे श्रीराम! तुम तो सकल जगत् के ज्ञाता हो, तुम सीता की उपेक्षा कर रहे हो? क्या तुम स्वयं नहीं जानते कि सीता सब प्रकार से शुद्ध, पवित्र और तुम्हारे प्रति समर्पित है।”

सीता को अग्नि में प्रविष्ट होते देखकर वे राम जो अभी तक कठोर मुद्रा अपनाए हुए थे, फूट-फूटकर रोने लगे और ज्योंही राम के आंसू धरती पर गिरे मानो सीता की अग्नि इन आंसुओं की ही प्रतीक्षा कर रही थी, शान्त होने के लिए। सामने जलती हुई चिता की राख इधर-उधर बिखर गई और प्रातःकालीन सूर्य की लाल-पीली आभा से युक्त तपे हुए सोने की भांति प्रभाववान् सीता यथावत् उपस्थित थीं।

अग्नि के शान्त होने के बाद भी सीता सुरक्षित और पहले से अधिक सौन्दर्यमयी होकर सामने उपस्थित थीं। ऐसा लग रहा था मानो स्वयं अग्निदेव उन्हें अपनी गोद में लेकर राम को समर्पित करते हुए कह रहे हों—

“लो राम! तुम्हारी सीता निष्पाप, निष्कलंक, निर्दोष है। इसे स्वीकार करो राम! शायद तुम नहीं जानते, तुमने जानने का प्रयास भी नहीं किया और सीता को तुमने कहने का अवसर नहीं दिया तथा सीता के अतिरिक्त तुम्हें यह सब कुछ कोई कैसे बता सकता था कि जो कुछ सीता पर बीता है, यह तो वही जानती है।

“हे राम! तुम तो माया-मृग को लक्ष्य बनाकर उसका वध करने वन में चले गए। छली मारीच ने लक्ष्मण को वहां से हटाने के लिए और सीता को भ्रमित करने के लिए लक्ष्मण और सीता को आवाज तुम्हारी आवाज में दी थी। तुम स्वयं अपने स्वर में मारीच के मुख से निकली आवाज को सुनकर चौंक उठे थे तो फिर सीता के भ्रमित होने में क्या दोष? अपने बल पराक्रम का घमण्ड करने वाला राक्षस रावण इसी अवसर की तलाश में था। उसने छल-बल से इस सती को सूने आश्रम में अकेला पाकर उठा लिया। नारी थी, इतना बल कहां से लाती कि दुष्ट रावण का प्रतिरोध कर पाती? तुम तो स्वयं दिव्य बलयुक्त हो राम! तुम स्वयं लक्ष्मण सहित दो बार मायावी मेघनाद के नागपाश में और शक्तिघात से परास्त हो चुके हो तो यह बेचारी अगर रावण का सामना नहीं कर पाई तो उसमें इसका क्या दोष?

और हे राम! रावण ने इसका हरण करके इसे अपने अन्तःपुर में बंदी बना लिया था। इस पर पहरा बिठा दिया, कितनी ही भयानक राक्षसनियों ने दिन-रात इसे त्रास दिया, तब भी इसका मन आपकी ओर से विचलित नहीं हुआ। कितने ही लोभ दिए गए और कितना आतंकित नहीं किया रावण ने, लेकिन यह अन्तरात्मा से आपके प्रति निष्ठावान रहते हुए कभी नहीं डिगी और रावण भी इसको हर ले जाने का दोषी अवश्य है, लेकिन पुष्पक विमान से वह इसे अशोक वन में छोड़ गया तथा सभी को यह आदेश दिया कि सीता के मन को उसके पक्ष में किया जाए। उसने अपने बल से इसे डराया, डांटा, धमकाया, मारने का डर भी दिया किन्तु वह कभी सीता से

मिलने अकेला नहीं आया। वह सदैव मंदोदरी के साथ आया, अपने मंत्रियों के साथ आया।

लज्जा के लिए तिनके की ओट बहुत बड़ी होती है श्रीराम! और धैर्यशाला एकनिष्ठ भाव वाली तुम्हारी इस पत्नी ने यह निर्वासन और कारागृह का दंश इस विश्वास पर ही झेला कि एक दिन तुम इसे इस कारागृह से मुक्ति दिलाओगे।

यदि इसे लेशमात्र भी इसका आभास होता कि तुम इसकी तपस्या, साधना और तुम्हारे प्रति निष्ठा का यह परिणाम दोगे कि इसे भरी सभा में लांछित करके इसका परित्याग करोगे तो यह अपने तप बल से अपने अपहरण से पूर्व ही अग्निदाह कर सकती थी। यह तुम्हें प्रेम करती है श्रीराम! और यह जानती भी है कि तुम इसके वियोग को सह नहीं पाओगे, इसीलिए इसने इतना कष्ट सहा और अब तक जीवित रही।”

राम के लिए मानो यह दिव्य आकाशवाणी थी और उन्हें लग रहा था कि प्रज्वलित अग्नि से सुरक्षित लौटी सीता के भीतर से प्रतिभासित कान्ति स्वयं मूर्तिमान होकर उनसे संवाद कर रही है और सीता की पवित्रता का प्रमाण दे रही है।

राम की आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने साक्षात् अग्निदेव को प्रणाम करते हुए कहा—

“क्षमा करें देव! सीता के बारे में मेरा मन उसी तरह शुद्ध है, जितनी शुद्ध सीता है। मैं तो स्वप्न में भी सीता के प्रति यह विचार नहीं रख सकता कि वह मेरे इतर किसी के बारे में सोच भी सकती है। उसकी एकनिष्ठता पर मुझे पूरा विश्वास है, किन्तु रावण के अन्तःपुर में लगभग वर्ष भर रहने के कारण सामाजिक दृष्टि से इसकी पवित्रता का प्रमाण आवश्यक था और मैं यदि ऐसा न करता तो कुल की मर्यादा का उपहास यह समाज करता। जिस प्रकार महासागर अपनी तटभूमि को नहीं लांघ सकता, उसी प्रकार रावण सीता के तेज का अतिक्रमण नहीं कर सकता था। फिर भी तीनों लोकों के प्राणियों के मन में सीता के प्रति विश्वास दिलाने के लिए एकमात्र अग्नि ही सहारा थी और इसमें मेरा सत्य ही मेरा सहारा था। मुझे विश्वास था कि सीता पवित्र है, इसे अग्नि का आशीर्वाद मिलेगा और यह सुरक्षित मेरा सान्निध्य पा सकेगी।”

इसके बाद राम ने आकाश में देखा, उन्हें लगा मानो उनके पिता महाराज दशरथ अपने पुत्र के मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप को देखकर प्रसन्नता से अभिभूत हो रहे हैं और देवलोक से अपना आशीर्वाद दे रहे हैं। फिर राम ने अपने भावुक मन को रोकते हुए, धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए सीता को अपने हृदय से लगा लिया और फुसफुसाते हुए कहा—

“मुझे क्षमा करना देवी! किन्तु यह सब कुछ मैंने तुम्हारी ही प्रतिष्ठा को सर्वव्यापी बनाने के लिए किया था। अब तुम लोक की दृष्टि में पूर्णरूप से निर्दोष हो सीते! मेरे योग्य तो तुम तब भी थीं और अब भी हो, लेकिन अब तुम समाज की दृष्टि में भी वही पुरानी सीता हो गई हो।”

सीता सहित राम ने लक्ष्मण को साथ लेकर अपने शिविर में प्रवेश किया।

पूरे एक वर्ष के बाद राम सीता के सामने थे और सीता राम के सामने। दोनों मौन थे।

कितनी जल्दी नाटक का पटाक्षेप हुआ है। यह परिवर्तन सीता के लिए सुखद भी था और

सम्मानजनक भी। उस समय तो सीता को भी और लक्ष्मण को भी राम का वह व्यवहार बड़ा अटपटा लगा था, लेकिन अब उन्हें यह विश्वास हो गया था कि राम केवल पति और भाई ही नहीं, वे प्रजापालक भी हैं और मर्यादा के रक्षक भी।

इस दृष्टि से राम भी सीता की दृष्टि में पहले से कहीं अधिक बड़ा हो गए। वे उनके प्रति और अधिक श्रद्धास्पद हो गई।

वाल्मीकि आश्रम में सीता

समय कितनी जल्दी करवट बदलकर आगे बढ़ गया, एक उत्साह परिवार के बीच घुल-मिल गया। राम राक्षस रावण पर विजय के बाद विभीषण को लंका का राज्य सौंपकर उन्हीं के पुष्पक विमान में सवार होकर चौदह वर्ष की समाप्ति पर अयोध्या लौट आए।

राम के अयोध्या आगमन की प्रतीक्षा जितनी माता कौशल्या को थी, उतनी ही भरत को और इन दोनों से अलग एक प्रतीक्षारत आंखें और थीं उर्मिला की, जो चौदह वर्ष से इसी आगमन के लिए तिल-तिल कर जल रही थीं।

अयोध्या आने पर ज्योंही राम ने नंदीग्राम की धरती पर पैर रखा, भरत तो नंगे पांव भाई के चरणों की रज सिर पर लगाने के लिए बेतहाशा दौड़ पड़। उनकी आंखों के आंसू थम नहीं रहे थे। अपने चरणों से उठाते हुए राम ने भरत को गले से लगा लिया।

“राम! तुम अयोध्या आ गए। मेरा तप सुफल हो गया। आज स्वर्ग से पूज्य पिता यह दृश्य देखकर अवश्य ही प्रसन्न हो रहे होंगे।”

भाव विह्वल कौशल्या ने राम और सीता को गले से लगा लिया। एक माता की सूनी गोदी में पुत्र की आंख से मिलन के आंसू गिरे, इससे बड़। सुख मां को और क्या मिल सकता था! फिर माता कैकेयी और सुमित्रा भी मिलीं।

महर्षि वसिष्ठ ने इस माता-पुत्र और भाई-भाई के मिलाप के बाद राम से कहा—

“वत्स! अब कल ब्रह्म मुहूर्त में तुम इस राज्य को विधिवत् ग्रहण करके अपना कार्यभार संभालो और प्रतीक्षातुर प्रजा को अपने दर्शनों से कृतार्थ करो।”

अवसर पाकर सीता ने लक्ष्मण से कहा—

“देवर जी! मैं उर्मिला के पास जा रही हूं? और तुम भी मेरा अनुगमन करो।”

सीता जैसे ही उर्मिला के कक्ष में पहुंचीं, वहां अब भी धूप और अगर की सुगंध फैली हुई थी तथा मध्य चौकी पर एक दीप जल रहा था और उसके सम्मुख बैठी एक प्रतीक्षातुर प्रियतमा अपने प्रिय के आने की आशा लिये ध्यानमग्न थी।

सीता ने धीरे-धीरे बिना आहट किए उर्मिला के कंधे के पास ठहरकर कान में फुसफुसाते हुए कहा—

“आंखें खोलो रानी! तुम्हारी तपस्या का सुफल तुम्हारे सामने है। यह फूल तुमने मुझे दिया था, इसे मैंने बहुत सहेजकर रखा है। तुम्हें सौंपती हूं, अब तुम संभालो।”

बावरी उर्मिला उत्सुकता में और उतावली में खड़ भी न हो पाई थी कि बीच से साड़ उलझने के कारण गिर पड़।

सीता ने उसे अपने दोनों हाथों से संभालकर उठाते हुए कहा—

“अब गिरने की जरूरत नहीं है मेरी लाडली! अब तो तुम्हें उठाने वाला आ गया है।”

उर्मिला सीता के कंधे से लगकर हिचकियां भरकर रो पड़ी। उसके मुंह से कोई बोल नहीं निकल पा रहा था, मगर सीता ने उसे ढांडस देते हुए कहा—

“मैं तुम्हें केवल अपने आने की सूचना देने आई हूँ, मिलूंगी बाद में। पहले अपने आने को फलीभूत तो कर लूँ और जो इतने दिनों से तुम्हारे कमरे में खुली हवा नहीं आई, इसे प्रेमराग से गंधयुक्त कर लो उर्मिला!”

अपनी प्रिय बहन के लिए संदेश देकर सीता बिना कुछ कहे बाहर चली आई और जैसे ही लक्ष्मण ने उर्मिला के कक्ष में प्रवेश किया। उर्मिला को लगा घनी अमावस्या के बाद यह पहली पूर्णिमा आई है, जिसकी चांदनी उसके महल में प्रविष्ट हो रही है।

उर्मिला की आंखें इस तेज रोशनी को सहन नहीं कर पाई और वह चिर विरहणी मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गई।

अब उर्मिला लक्ष्मण की गोद में सिर रखकर वर्षों की भरी आंखें हल्की कर रही थी और लक्ष्मण उसके बालों में उंगली फिराते हुए उसे अपने होने का प्रमाण दे रहे थे।

महल का कण-कण इस प्रयत्न में लगा था कि यह रात बीते नहीं। चन्द्रमा एक ही जगह ठहर जाए। आंखें जिसे देखने को तरस रही थीं, उसे अपलक देखते रहने के लिए इतना तो आवश्यक था ही।

उधर प्रातःकाल महाराज वसिष्ठ के निर्देशन में राम के राज्याभिषेक की तैयारियां आरम्भ हो गईं। कुशल नाई बुला लिया गया। इस वनवास काल में राम और लक्ष्मण ही नहीं, भरत और शत्रुघ्न भी जटाधारी हो गए थे। अतः उन सबके क्षौर कर्म के लिए प्रबंध किया गया। स्नान आदि के बाद दिव्य आभूषणों से युक्त श्रीराम ने सीता, लक्ष्मण, उर्मिला, भरत, मांडवी और शत्रुघ्न, श्रुतिकीर्ति और तीनों माताओं सहित राज्यसभा में प्रवेश किया।

लंकापति रावण के छोटे भाई महाराज विभीषण, महाराज सुग्रीव, हनुमान और अन्य सभी उपस्थित अतिथियों तथा विशिष्ट तपस्वियों के बीच ब्राह्मणों के मंत्रोच्चार के साथ अयोध्या का राजमुकुट श्रीराम के मस्तक पर विराजमान कर दिया गया।

कितनी शीघ्र सम्पन्न हो गया यह राज्यारोहण, लेकिन आज देवलोक में ही सही महाराज दशरथ की आत्मा पूरी तरह प्रसन्न थी कि इतने व्यवधान आने के बाद भी अयोध्या के राजपरिवार की एकता अखंडित रही। कैकेयी के वरदान ने थोड़ा समय के लिए जो काली घटाएं अयोध्या के राज्याकाश पर फैला दी थीं, उनके राजपुत्रों ने संयम और धैर्य से धीरे-धीरे उन्हें छंट दिया और अपूर्ण प्रभामंडित सूर्य आकाश में भासमान हो रहे थे।

यही तो लक्ष्य था महाराज दशरथ का भी।

विडंबना यह थी कि स्वयं सीता कितने कम समय देख पाई यह सुख! वे तो लोकापवाद की शिकार हो ही गई हैं। उन्हें तो महर्षि ने ही बताया कि जब उन्होंने लव और कुश को जन्म दिया था, उस रात्रि सौभाग्य से शत्रुघ्न महर्षि वाल्मीकि के ही आश्रम में थे और रात्रि में जब मुनि कुमारों के साथ महर्षि वाल्मीकि ने सीता के प्रसव होने का समाचार दिया और यह बताया कि देवी सीता ने दो सुंदर एवं विलक्षण पुत्रों को जन्म दिया है तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

महर्षि की आज्ञा से ही वे सीता की पर्णशाला में गए, उन्हें प्रणाम किया।

बहुत दिन के बाद अयोध्या से आए अपने ही राजपरिवार के एक व्यक्ति से मिलकर सीता को सुख की अनुभूति हुई।

“मत रोइए भाभी! आपने कठिन तपस्या के बाद भी एक मां का दायित्व पूरा किया है और अयोध्या को उसका उत्तराधिकारी दिया है। आपकी यह भेंट अयोध्या गर्व से स्वीकार करेगी। जिसने आपको ठुकराया है, वह आपकी इस भेंट को स्वीकार कर आपको पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करेगा भाभी!”

यह कहते हुए शत्रुघ्न अपने लक्ष्य पर चले गए, जहां उन्होंने लवणासुर का वध करके मधुरापुरी बसाई।

संयोग की बात भी निराली थी। सीता के ये दोनों पुत्र लव और कुश महर्षि वाल्मीकि के संरक्षण में पलते-बढ़ते बारह वर्ष के हो गए। समय किस प्रकार बीत गया कोई नहीं जान सका और फिर मधुरापुरी से अयोध्या लौटते हुए जब वाल्मीकि आश्रम में एक बार फिर शत्रुघ्न रुके तो फिर से उनकी पुरानी याद ताजा हो आई। यहीं उन्होंने राम के चरित्र का काव्यबद्ध गायन सुना, जिसका प्रत्येक अक्षर और वाक्य सच्चे घटनावृत्त का परिचय दे रहे थे।

यह काव्य गायन सुनकर शत्रुघ्न भाव-विभोर होते हुए मूर्च्छित से हो गए। उनकी आंखों में आंसू आ गए और जो लोग उनके साथ थे, वे आश्चर्यचकित थे, क्योंकि जिन बातों को वे पहले अपनी आंख से देख चुके थे और राम से सुन चुके थे, उनका ज्यों का त्यों वर्णन महर्षि ने अपने इस काव्य में किया था।

शत्रुघ्न को लौटना था। अतः वे प्रातःकाल ही अयोध्या लौट गए।

राम ने अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि भी उपस्थित हुए। उनके साथ लव और कुश भी आए। यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए उत्तम लक्षण से संपन्न काले रंग का एक घोड़ा लक्ष्मण के संरक्षण में छोड़ दिया गया था, जो भूमंडल में भ्रमण करके लौट चुका था। इस यज्ञ में सुग्रीव और विभीषण को भी सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया गया था।

महर्षि वाल्मीकि ने ऋषियों के ठहरने के लिए जो बाड़ बनाए थे, उनके पास ही अपनी एक पर्णशाला बना ली और लव तथा कुश से कहा—

“तुम दोनों भाई एकाग्रचित्त होकर, सब ओर घूम-फिरकर इस रामायण काव्य का गान करो।

ऋषियों और ब्राह्मणों के स्थानों पर, गलियों में, राजमार्गों में, राजाओं के स्थान पर, श्रीराम के दरवाजे पर और जहां ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे हैं और खासकर ऋत्विजों के आगे विशेष रूप से इसका गान करना। धन का लोभ न करना और यदि श्रीराम तुमसे पूछें कि तुम दोनों किसके पुत्र हो तो केवल कहना कि हम महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं।”

प्रातःकाल से ही लव और कुश ने महर्षि के द्वारा बताए विधान के अनुसार सुमधुर कंठ से रामायण का गान प्रारम्भ कर दिया।

सौभाग्य से श्रीराम ने जब उनका यह सुमधुर गान सुना तो उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ। फिर तो कर्मानुष्ठान से अवकाश प्राप्त करके महाराज ने सभी विद्वानों, महाजनों और अतिथिगणों को एकत्रित करके उन दोनों बालकों को सभा में बुलाया।

यहां लव और कुश ने सबकी उपस्थिति में काव्य-पाठ का गान किया।

देखने वालों ने यह स्पष्ट देखा कि इन दोनों ही कुमारों की आकृति राम से बहुत अधिक साम्य रखती थी। यदि इनकी जटाएं हटा दी जाएं तो इनमें और राम में कोई अंतर नहीं लगता।

इस पहली बैठक में दोनों मुनि कुमारों ने बीस सर्गों तक रामायण गान किया, जिसे सुनकर महाराज राम ने भरत को आदेश दिया—

“हे रघुनंदन! इन्हें अठारह हजार स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार में दी जाएं।”

कुश ने प्रतिरोध करते हुए कहा, “नहीं महाराज! हम वनवासी हैं, जंगली फल-मूल से निर्वाह करते हैं, स्वर्ण मुद्रा घर में ले जाकर हम क्या करेंगे?”

राम ही नहीं, वहां सभा में बैठा प्रत्येक व्यक्ति इन निर्लोभी कुमारों के इस चरित्र को देखकर हतप्रभ रह गया।

राम ने आचर्यचकित होकर पूछा—

“तुम्हें इस काव्य की उपलब्धि कहां से हुई? इसकी श्लोक संख्या कितनी है और इसके रचयिता कौन हैं?”

विनम्र होकर कुश ने उन्हें बताया—

“हे महाराज! हमने जिस काव्य के द्वारा आपके इस सम्पूर्ण चरित्र का प्रदर्शन कराया है, उसके रचयिता स्वयं वाल्मीकि हैं और इसमें चौबीस हजार श्लोक और सौ उपाख्यान हैं। पांच सौ सर्गों और छः काण्डों का यह सम्पूर्ण काव्य है। महर्षि ने इसके उत्तर काण्ड की रचना भी की है। यदि आप इसे पूरा सुनना चाहते हैं तो यज्ञ कर्म से अवकाश मिलने पर हम इसे सुना देंगे।”

यह कहते हुए लव और कुश लौट आए। राम के मन में ये अबोध बालक एक बेचैनी जगा आए थे।

कई दिन तक रामायण का यथावत् पाठ चलता रहा। इस कथा से ही उन्हें यह ज्ञात हुआ कि कुश और लव दोनों कुमार सीता के ही पुत्र हैं।

राम उन्हें देखकर व्याकुल हो उठे। सभा के बीच में ही उन्होंने अपने विश्वस्त दूत को बुलाकर कहा—

“जाओ, महर्षि वाल्मीकि को मेरा यह संदेश दो कि यदि सीता शुद्ध चरित्र हैं और उनमें किसी तरह का पाप नहीं है तो वे आप महामुनि की अनुमति लेकर यहां जनसमुदाय में अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।”

राम ने आदेश दिया, “इस संदर्भ में महर्षि वाल्मीकि और सीता का अभिप्राय मुझे शीघ्र बताया जाए। कल सवेरे मिथिलेश कुमारी जानकी भरी सभा में आकर कलंक दूर करने के लिए शपथ लें।”

राम का यह आदेश सुनकर वह दूत हत्प्रभ रह गया, लेकिन आदेश था, अतः वह शीघ्र ही महर्षि वाल्मीकि की पर्णकुटी में पधारा, जहां वे ठहरे हुए थे।

महर्षि तो पहले से ही ऐसे सुयोग की प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए उन्होंने लव और कुश को अयोध्या की गलियों में रामायण गान के लिए प्रेरित किया था। दूत को ‘ऐसा ही होगा’ कहते हुए महर्षि वाल्मीकि ने आश्वस्त किया, क्योंकि पति स्त्री के लिए देवता है। इसलिए सीता वही करेगी, जिसकी आज्ञा राम देंगे।

अगले दिन प्रातः यज्ञ-मंडप में पूरी सभा आयोजित थी। सभी लोग महाराज राम के जीवन में सीता की पुनर्वापसी को लेकर प्रसन्न थे। सभा में वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र, दुर्वासा आदि अनेक ऋषि-मुनि यहां तक कि नारद और तपोनिधि अगस्त्य भी कुतूहलवश यहां आ गए। महापराक्रमी राक्षस और वानर तो पहले से ही विद्यमान थे। अनेक ज्ञाननिष्ठ, कर्मनिष्ठ और योगनिष्ठ महापुरुष इस सभा में उपस्थित थे।

नियत समय पर यह जानकर कि महर्षि वाल्मीकि सीता के साथ पधार रहे हैं, सारा समूह पत्थर की भांति निश्चल हो गया।

महर्षि के पीछे सीता सिर झुकाए चली आ रही थीं। उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रों से आंसू झर रहे थे। अपने हृदय मंदिर में अब भी वे श्रीराम का चिंतन कर रही थीं।

समस्त दर्शक समुदाय यह दृश्य देखकर शोक से व्याकुल, अश्रुपूरित नेत्रों से भीग गया।

जनसमुदाय के मध्य में पहुंचकर महर्षि वाल्मीकि ने उद्धोष करते हुए कहा—

“हे महाराज राम! आपने लोकापवाद से डरकर जिसे मेरे आश्रम के समीप त्याग दिया था, मैं अपने तप, पुण्य, व्रत, नियम और धर्म अनुष्ठान को साक्षी करके कहता हूं कि यदि मेरे कथन में कहीं कोई असत्यता हो तो मेरी तपस्या निष्फल हो जाए। आपकी पत्नी सीता धर्मपरायण, उत्तम व्रत का पालन करने वाली है। मैं प्रचेता (वरुण) का दसवां पुत्र हूं। मैंने कभी झूठ वचन मुख से नहीं निकाला। मैंने कई हजार वर्षों तक तपस्या की है। मैं सत्य कहता हूं—ये दोनों कुमार कुश और लव, जिन्हें जानकी ने जन्म दिया है, ये आप ही के पुत्र हैं और आप ही के समान योद्धा और वीर हैं।

यह देवी सीता, जो आपके सम्मुख नेत्र झुकाए, हाथ जोड़ खड़ी है, पाप इसे छू भी नहीं सका। यह मैंने दिव्यदृष्टि से जान लिया कि सीता का भाव और विचार परम पवित्र है। आपको भी यह प्राणों से अधिक प्यारी है और आप स्वयं भी यह जानते हैं कि यह सर्वथा पवित्र है। आपने तो केवल लोकापवाद से डरकर एक राजा की मर्यादा का पालन करते हुए सीता का परित्याग किया। अतः यह देवी इस जनसमुदाय के समक्ष अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाने के लिए आपके सामने उपस्थित हुई है।”

राम, जो अभी तक अपने धैर्य, संयम, भावना, स्नेह और संवेदना को राज्य के दायित्व के तले दबाए हुए थे, वह अजस्र स्रोत नेत्रों के रास्ते आंसुओं के रूप में फूट पड़ा और उन्होंने भावुक होकर सभा में महर्षि को संबोधित करते हुए कहा—

“हे महाभाग! आप धर्म के ज्ञाता हैं। सीता के बारे में आप जो कह रहे हैं, उससे मुझे उनकी शुद्धता पर पूरा विश्वास हो गया है। एक बार पहले भी सीता अपनी अग्नि-परीक्षा में निष्पाप सिद्ध हो चुकी हैं, लेकिन वह प्रमाण की प्रक्रिया लंका में वानर समूह के सम्मुख महाराज विभीषण के साक्ष्य में हुई थी। अयोध्यावासी उससे अपरिचित थे, जिसके कारण यहां फिर से एक बार लोकापवाद उठ खड़ा हुआ, जिससे विवश होकर मुझे बाध्यता में सीता का परित्याग करना पड़ा। यह जानते हुए कि सीता सर्वथा निष्पाप है। मैंने केवल समाज के भय से इनका परित्याग किया। आप उदारमना! मेरे इस अपराध को क्षमा करें।”

श्रीराम ने यह भी कहा, “मैं जानता हूँ कि ये जुड़वां पुत्र जिन्हें सीता ने जन्म दिया है, मेरे ही हैं फिर भी इस जनसमुदाय में लोकापवाद के संशय को मिटाने के लिए सीता को अपनी शुद्धि का प्रमाण तो देना ही होगा।”

राम ने यह कह तो दिया, लेकिन उन्हें स्वयं अपनी कठोरता जानकी के प्रति अन्याय लगी। वह बाध्य थे, लेकिन यह प्रस्ताव करने के बाद क्षण-भर को उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो देवलोक से महाप्रतापी ब्रह्मा आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वदेव, मरुतगण सभी महर्षि, नाग, गरुड़ और सिद्धगण राम की इस कठोरता को देखकर सीता के प्रति भावुक मन हुए राम को समाझाने आए हैं कि हे राम! तुम यह क्या कर रहे हो? लेकिन राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे। यह ठीक है कि महर्षि वाल्मीकि के निर्दोष वचनों से पूरी सभा सन्नाटे में आ गई थी और ऐसा लग रहा था कि सभी को महर्षि की बात पर विश्वास हो गया था, किन्तु वे यह भी मानते थे कि यदि जनसमुदाय में सीता अपने मुख से अपनी शुद्धि को एक बार प्रमाणित कर दे तो अधिक अच्छा होगा। यह देखते हुए महर्षि वाल्मीकि ने सीता के पास आकर कहा—

“पुत्री! राज्य की मर्यादा बड़ी कठोर होती है। तुम ही नहीं, राम भी इस समय एक राजा की मर्यादा से बंधे हुए हैं। तुम तो जानती हो, स्वयं तुम्हारे श्वसुर महाराज दशरथ, जो सब प्रकार से समर्थ थे, केवल मर्यादा के कारण ही रानी कैकेयी के वचनों से परास्त हो गए और जो राम उन्हें अत्यधिक प्रिय थे, उन्हें भी वे वनवास देने के लिए बाध्य हुए। राजा व्यक्ति नहीं होता पुत्री! वह जनसमुदाय की अभिव्यक्ति होता है। जहां महाराज दशरथ अभिव्यक्ति थे, उसी प्रकार राम भी अभिव्यक्ति हैं। इनका अपना कुछ नहीं है पुत्री! इनके ऊपर राज्य का दायित्व है और इनकी निजी

भावना का उसके सामने कोई महत्व नहीं है। राजा की समस्त चेतना राज्य के लिए समर्पित होती है।

और जो राजा अपने दायित्वों को अपने हित में प्रयुक्त करता है उसका उसी प्रकार विनाश होता है जैसे रावण का हुआ। उसने जन भावना का तिरस्कार किया और अपने विचारों को समाज पर थोपा लेकिन राम समाज के विचारों को स्वीकार करते हुए न्यायपूर्वक उनका अनुमोदन और अनुपालन करते हैं। यही राजधर्म है पुत्री!”

महर्षि वाल्मीकि से यह सुनकर हाथ जोड़-जोड़ दृष्टि ऊपर उठाते हुए सीता ने पहले राम को देखा फिर धीरे-धीरे उस सभा में उपस्थित जन-समुदाय को देखा और फिर एक बार आकाश को देखते हुए अपनी दृष्टि झुका ली और महाराज राम के सम्मुख प्रणाम की मुद्रा में कांपते हुए अधरों से उसने कहा—

“मैंने सदैव श्रीराम का स्मरण किया है। मन, वचन, कर्म से मैं उन्हीं की रही हूँ, यदि यह सत्य है कि मैंने किसी पुरुष का स्पर्श तो दूर, उसका चिंतन भी नहीं किया तो हे धरती माता! मुझे अपनी गोद में स्थान दे। यदि मैं एकनिष्ठ पतिव्रता रही हूँ, केवल राम ही मेरे आराध्य रहे हैं तो हे पृथ्वीमाता! जिस प्रकार तुमने मुझे जन्म दिया, उसी प्रकार आज मेरी मर्यादा की रक्षा करो और मुझे अपनी गोद में स्थान दो।

मैंने अपने जीवन में किसी के साथ कोई अपराध नहीं किया सत्य का आचरण किया है। हे श्रीराम! जन्म-जन्मान्तर तक आप ही मेरे पति रहें, यही अभिलाषा लेकर मैं अपनी जननी धरती माता से निवेदन करती हूँ कि वह अपनी इस निरुपाय पुत्री को अपनी गोद में लें। मैं आपके दोनों पुत्र आपको सौंपती हूँ।”

जैसे ही सीता ने यह कहते हुए एक पुत्री की भांति मां धरती से निवेदन किया, उसी समय पृथ्वी से कंपन के साथ एक दरार बनकर सिंहासन प्रकट हुआ।

यह अलौकिक दृश्य वहां उपस्थित सभी सभाजनों ने देखा और सब आश्चर्यचकित रह गए।

उस सिंहासन के साथ ही उस पर विराजमान पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी अपने दिव्य रूप में प्रकट हुई और एक मां की तरह दोनों बाहें फैलाकर अपनी पुत्री को उसका स्वागत करते हुए, अनुमोदन करते हुए अपने सिंहासन पर बिठा लिया।

सीता का भूतल में इस प्रकार प्रवेश देखकर सब लोग हर्ष और शोक में डूब गए। हर्ष इस अलौकिक दृश्य का था और शोक सीता की बिछुड़ान का। दो क्षण के लिए वहां का सारा समुदाय मोहाच्छंद-सा हो गया।

उपस्थित मुनिगण, “धन्य सीता! धन्य” की आवाज गुंजाते हुए उनके चरित्र की प्रशंसा करने लगे।

लेकिन राम को सीता के द्वारा शुद्धता का दिया गया यह प्रमाण भारी पड़ा। क्षण-भर पहले सीता के पुनः मिलन की संभावना को लेकर उनके मन में एक आशा की लहर उठी थी वह

अंधेरे के गर्त में डूब गई और बिलखते हुए उन्होंने कहा—

“यह तुमने क्या किया सीते?”

महर्षि वाल्मीकि ने बड़बुद संयत होकर कहा—

“तुम्हारे द्वारा किए गए अपमान से मुक्ति पाने के लिए उसके पास यही एकमात्र उपाय था राम!”

“और हे राम! सीता ने यह जीवन निर्वासन के बाद जो मेरे आश्रम में व्यतीत किया है, वह अपने लिए नहीं बल्कि इस कृतघ्न अयोध्या के लिए किया जिसने उसके वनवास के त्याग को भुला दिया और असहाय दशा में रावण के यहां बिताए गए समय को लांछन के रूप में उसके चरित्र के साथ जोड़ दिया।

हे राम! यदि सीता पर अयोध्या के उत्तराधिकारी उत्पन्न करने का दायित्व न होता और जिस समय लक्ष्मण उन्हें भ्रमण के हित भागीरथी के तट पर असहाय छोड़कर आ गए थे और उन्हें यह बता दिया था कि राम ने उनका परित्याग कर दिया है, यदि सीता उस समय गर्भवती न होती तो हे राम! निश्चय ही वह उसी समय भागीरथी की शीतल लहरों में समा गई होती। उसने यह निर्वासन का समय अपने दो पुत्रों, लव और कुश के लिए ही झेला था राम!

अब तुमने और तुम्हारी अयोध्या ने जान लिया होगा कि तप में क्या शक्ति होती है! एक सती नारी, जो सेवा में पूर्णतया समर्पित होती है, यदि वह पूर्ण एकनिष्ठ होने पर भी पति के द्वारा अपमानित होती है तो वह अपने जीवन को निरर्थक मानकर मृत्यु का ही वरण करती है और सीता ने भी धरती की गोद में आश्रय लेकर एक प्रकार से मृत्यु का ही वरण किया है।”

यह कहकर महर्षि शान्त हो गए और लव व कुश को मौन आशीर्वाद देते हुए सभा भवन छोड़कर जाने के लिए उद्यत हुए।

राम की आंखों में आंसू छलछला रहे थे, वे बार-बार विलाप कर रहे थे।

एक बार फिर उनके भीतर का शक्तिशाली पुरुष जाग उठा और बोले—

“पहली बार सीता समुद्र के उस पार लंका में जाकर मेरी आंखों से ओझल हुई थी, तब मैं हनुमान और सुग्रीव की सहायता से उन्हें वापस लौटा लाया था तो पृथ्वी के भीतर से लौटा लाना कौन बड़बुद बात है?”

यह कहते हुए धीरे धीरे राम ने क्रोध करते हुए कहा—

“हे पूजनीय भगवती वसुन्धरे! मेरी सीता मुझे लौटा दो अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊंगा या फिर मुझे भी अपनी गोद में ले लो वरना मैं तुम्हारी सारी भूमि का विनाश कर दूंगा, भले ही प्रलय आ जाए।”

महर्षि वाल्मीकि ने अन्य महात्मा, ऋषियों के समक्ष राम को उनका कर्तव्य बोध कराया और यह बताया कि—

“यह ठीक है कि तुम समस्त पृथ्वी को आन्दोलित कर सकते हो, उसका विनाश कर सकते हो लेकिन तुम राजा भी हो राम! और तुम्हें सामाजिक नियमों के साथ-साथ प्राकृतिक नियमों का भी पालन करना है। सीता का पृथ्वी को गोद में समा जाना तुम्हारी उस भूल का परिणाम है जिसके कारण तुमने समय रहते नारी मनोविज्ञान को पढ़ने का प्रयास नहीं किया। राज्य प्रशासन में भी कुछ सत्ताएं ऐसी होती हैं जिसके ऊपर राजा को निजी तौर पर अपने विवेक से निर्णय लेना होता है, लेकिन तुमने यह नहीं किया। अब एक वीर पुरुष की भांति प्रकृति के इस सत्य को स्वीकार करो राम! और कुश और लव को अपना पुत्र स्वीकार करो। यही उस देवी के प्रति तुम्हारा भाव समर्पण होगा।”

महर्षि के वचनों के बाद राम का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने सीता के बिछोह को प्रकृति के द्वारा नियति सत्य और न्याय जानकर एक बार फिर कुश और लव को अपने गले लगा लिया।

सीता अब एक स्मृति मात्र रह गई।

सीता वास्तव में वीर्य शुल्का ही थीं। राम ने उनका वरण करने के लिए रखी गई शर्त को शिव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर पूरा किया और उन्हें पत्नी के रूप में ग्रहण किया, इस ऋण का प्रतिदान सीता ने निर्वासन के बाद भी जीवित रहकर, राम के दोनों पुत्रों को जनम देकर पूरा किया। सीता को अपने सामने ही रसातल में समाते देखकर राम विचलित तो हो ही गए थे। सीता के निर्वासन पर उन्हें यह तो विश्वास था कि सीता जीवित हैं किन्तु अब तो उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से उनका अवसान होते देख लिया था अतः अब उनके जीवन में एक शून्य-सा उपस्थित हो गया था जिसे अब इस जीवन में उनके लिए उसे भरना असंभव था।

राम अपने दोनों पुत्रों को अपनी बांहों से थामे हृदय से लगाए हुए रोते हुए निश्चल खड़े थे।

महर्षि वसिष्ठ और महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा—

“धैर्य धारण करो राम!”

तीनों माताओं ने भी राम को सांत्वना देते हुए कहा—

“अब सीता लौटकर नहीं आएंगी वत्स! वह देवी अयोध्या के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करने के लिए ही अवतरित हुई थी और अपना वह कार्य पूरा करके तुमसे, हमसे, सबसे विदा ले गई है।”

अश्रुपूरित नेत्र लिए राम मानो एकाकी से खड़े कह रहे थे—“हे सीता मैं तुम्हारा दोषी हूं, मुझे क्षमा करना। तुम्हारा यह अवसान लोक में सदैव याद किया जाएगा।”